

**TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182043

UNIVERSAL
LIBRARY

शपथ

[सांस्कृतिक नाटक]

रचयिता—

श्री० हरिकृष्ण 'प्रेमी'

१९५१

आत्माराम एण्ड सन्स

पुस्तक-विक्रेता तथा प्रकाशक

कश्मीरी गेट, : दिल्ली

प्रकाशक—

रामलाल पुरी

आत्माराम एण्ड सन्स

कश्मीरी गेट, दिल्ली

Checked 1965

मूल्य ढाई रुपया

प्रथम संस्करण—जुलाई, १९५१

Checked 1969

आशा और उषा का

है शपथ में देश की भूली कहानी,
है शपथ में देश की भूली जवानी,
चिर नई इतिहास की गाथा पुरानी,
है पड़ी संसार को फिर-फिर सुनानी ।

मैं तुम्हें कुछ दे न पाया,
क्योंकि जग से ले न पाया,
पर तुम्हें देने हृदय के
कुब्ज से यह फूल लाया ।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

स्पष्टीकरण

“शपथ” ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नाटक है। दशपुर (मध्य भारत-स्थित वर्तमान मंदसौर) में आज भी एक प्रस्तर स्तंभ पड़ा हुआ है जिसपर लिखा हुआ है—“उसने उन प्रदेशों को भी जीता जिनपर गुप्त सम्राटों का आधिपत्य नहीं था और न तो जहाँ राजाओं के मुकुटों को ध्वस्त करने वाली हूणों की आज्ञा ही प्रवेश कर पायी थी। लौहिय से लेकर महेंद्र पर्वत तक और गंगा से स्पष्ट हिमाजय से लेकर पश्चिम पयोत्र तक के प्रदेशों के सामंत उसके चरणों पर लोटते थे। मिहिरकुलने भी जिसने भगवान शिव के अतिरिक्त और किसी के सामने सर नहीं नवाया, अपने मुकुट के पुष्पों द्वारा युगल चरणों की अर्चना की।”

यह प्रशस्ति वरम-भट्ट नामक कवि ने शपथ के नायक यशोधर्मन के संबंध में लिखी है। यशोधर्मन का मूल नाम विष्णुवर्धन था। उसके कहीं के वंशानुगत राजा होने का इतिहास में कोई प्रमाण नहीं है। वह साधारण व्यक्ति था, किन्तु उसने जन-मत को उत्तंजित कर एक सफल सशस्त्र राजनीतिक क्रांति की, यही इस नाटक का प्रधान विषय है।

हूणों के समान आतंककामिणी, दुर्धर्ष शक्ति संसार के इतिहास में दूसरी नहीं हुई। इन्होंने सारे यूरोप को रोंद डाला था और जब अपना मुख भारत की ओर फेरा तो इन्हें शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य से टक्कर लेनी पड़ी। महान पराक्रमी सम्राट स्कंदगुप्त जीवन भर हूणों के टिड्डी दल को भारत में न घुसने देने का प्रयास करता रहा, इसी प्रयास में उसने वीर-गति पाई। स्कंदगुप्त के पश्चात् कोई प्रबल व्यक्ति ऐसा न हुआ जो हूण शक्ति के तूफान के सामने खड़ा होता।

हूणों ने, जो भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश से ही टकरा-टकरा कर रह जाते थे, अग्रसर होकर मालव प्रदेश तक अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। गुप्त साम्राज्य अंतिम श्वास ले रहा था। भारत के अन्य राजा अपने-अपने प्रदेशों में मुँह छुपाए बैठे थे, उन्हें यह नहीं सूझता था कि अपने शत्रु को संगठित होकर पराजित कर भारत से निकाला जाए—तब जनता में से एक वीर प्राण खड़ा होकर विश्वविजयी हूणों की शक्ति को धूल में मिला कर देश को स्वतंत्र करता है। वास्तव में यह घटना भारतीय प्राणों को ओज, आत्मविश्वास और बल प्रदान करने वाली है।

“शपथ” में भारतीय इतिहास के आधारपर भारतीयों के उन गुणों और संस्कारों का उल्लेख है जिनके कारण भारत तेजस्वी, वीर और बलवान बना तो उन निर्बलताओं और त्रुटियों का भी—जिन के कारण भारत को अनेक बार विदेशी शक्तियों से पराजित होना पड़ा।

इस समय सुदीर्घ काल तक पराधीन रहने के पश्चात् भारत स्वतंत्र हुआ है, किन्तु दुख की बात है कि जिन भूलों और जिन जातीय दुर्गुणों के कारण भारत बार बार पराधीन हुआ है उन्हें फिर दोहराया जा रहा है। यह शुभ चिह्न नहीं है। हमें अपने देश के इतिहास से शिक्षा लेनी चाहिए। इतिहास के अध्ययन का अर्थ तिथियों, घटनाओं, और राजाओं के नामों को याद कर लेना भर नहीं है। इतिहास तो हमें बताता है कि हमें क्या करना चाहिए—क्या नहीं—किस तरफ जाने में पतन है, किधर जाने में उत्थान—कहाँ मरण है कहाँ जीवन।

“शपथ” केवल प्राचीन काल का दर्पणहीन ही है—अपितु वर्तमान के लिए प्रकाश-स्तम्भ है। इसमें मैं नहीं बोला हूँ—देश के पीड़ित प्राण बोले हैं। यह गंभीरता से अध्ययन और मनन करने की वस्तु है।

पात्र-परिचय

विष्णुवर्धन (यशोधर्मन)	दशपुर के विषयपति का पुत्र (जो जन-नायक बना)
वत्स भट्ट	विष्णुवर्धन का मित्र (कवि और विष्णुवर्धन का महामन्त्री)
मिहिरकुल	पहले हूण युवराज, पश्चात सम्राट
धन्यविष्णु	मालव प्रदेश का हूणों के आधीन राजा
अभयदत्त	विष्णुवर्धन का संधिविग्रहक
धर्मदास	विष्णुवर्धन का बलाधिकृत
जयदेव	विष्णुवर्धन का सहायक सैनिक
महाज्ञान	बौद्ध भिक्षु
हेमचन्द्र	दशपुर का नगर-श्रेष्ठी
हूण सेनापति	मिहिरकुल का विश्वासपात्र सेनापति
सुहासिनी	धन्यविष्णु की सहोदरा, विष्णुवर्धन की प्रेयसी
षार्वती	विष्णुवर्धन और मंदाकिनी की जननी
मंदाकिनी	विष्णुवर्धन की सहोदरा
कंचनी	उज्जयिनी की प्रमुख नर्तकी
उमा	जयदेव की पत्नी

केवल एक या दो दृश्यों में कुछ क्षणों के लिए आने वाले पात्रों का परिचय उन्हीं दृश्यों में मिल जाता है। उनमें—मारुत (एक मालव सैनिक), उज्जयिनी का नगर सेठ, चर्मवती तट का नौका-संचालक, मालती और मयूरी (कंचनी की दासियाँ), मंदिर का पुजारो, गुप्तचर, द्वारपाल, सैनिक, नागरिक, परिचायक, परिवारिकाएँ, मधु-वालाएँ, मधु-शाला का स्वामी, मालू (एक भील) भीमदेव (एक सैनिक), एक चाँडालिन आदि हैं।

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

[समय—प्रभात । स्थान—दशपुर में विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) के भवन से संलग्न वाटिका । एक मिशाल आम्रवृक्ष की शाखा पर रेशमी रज्जु का झूला पड़ा हुआ है जिस पर वत्स भट्ट बैठा धीरे-धीरे झुकते झुकते होता हुआ गीत की पंक्ति गुनगुना रहा है ।]

वत्स—स्वर्ण सा है तन तुम्हारा,
स्वर्ण सा है मन तुम्हारा ।

[विष्णुवर्धन का प्रवेश । विष्णुवर्धन के वस्त्राभरण वत्स भट्ट के वस्त्राभरण की अपेक्षा अधिक मूल्यवान हैं । उसकी कमर में तलवार, स्कन्ध पर धनुष, पृष्ठ पर तूणीर और हाथ में हँमिया है ।]

विष्णुवर्धन—कल्पना के आकाश में कंचन-तन के दर्शन करने के अतिरिक्त कुछ और भी कार्य है कविवर को ।

वत्स—नृषित नेत्रों की तृष्णा रूप-दर्शन से ही शान्त होती है, विष्णुवर्धन !

विष्णु—किन्तु रूप के चरणों को वास्तविकता की भूमिपर भी तो पड़ना चाहिए ।

वत्स—पड़ना चाहिए । यौवन पुकार-पुकार कर कहता है पड़ना चाहिए, किन्तु तुम्हारे समान निष्ठुर साथी रूप, यौवन और प्रीति का त्रिवेणी-संगम होने कब देते हैं । इस कारण कवि के चिर-तृषित प्राण कल्पना के आकाश में रूप-दर्शन करते हैं ।

विष्णु—किन्तु मित्र, तुम तो कहा करते हो अतृप्ति आनन्ददायिनी है ।

वत्स—निश्चय ही, अभाव में आनन्दानुभव करना तप है और तप आनन्द-प्रदाता है ।

विष्णु—अभाव में आनन्दानुभव करने को तप नहीं कायरता की संज्ञा देनी चाहिए । भारत ने तप और त्याग के नाम पर पराजय से संधि की है, अकर्मण्यता को आश्रय दिया है ।

वत्स—तब तुम क्या भोग के राक्षस को तप के देव-मन्दिर में प्रतिष्ठित करना चाहते हो ?

विष्णु—जब तक काया है तब तक काया की आवश्यकताएँ हैं और उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पुरुषार्थ को चिर-जागरित रखना मानव का स्वभाव होना चाहिए ।

वत्स—(झूठे से उतर कर) यह विष्णुवर्धन नहीं, विष्णुवर्धन का क्षत्रियावेश बोल रहा है । क्षात्र-धर्म पृथ्वी के धरातल से ऊपर नहीं उठ सकता, इसलिए वह काया को पृथ्वी पर खड़ा रखना ही जीवन समझता है, वह कायाओं की सीमाओं को तोड़कर प्रवाहित होने वाले प्रबल जीवन-प्रवाह को नहीं देखता । उसे देखने के लिए ब्राह्मण के त्रिलोक और त्रिकालदर्शी चक्षुओं की आवश्यकता है ।

विष्णु—ब्राह्मणों के त्रिलोक और त्रिकालदर्शी चक्षुओं की अधिक प्रशंसा न करो, वत्स ! एक काल्पनिक स्वर्ग की महिमा गाकर तुमने स्वर्ग से अधिक सुन्दर जननि जन्मभूमि से मानव को विरत कर दिया है ।

वत्स—ऐसा कहना भारतीय तत्त्व-ज्ञान के प्रति अज्ञान प्रकट करना है । भोग की जीवन में आवश्यकता है किन्तु भोग ही जीवन का आदि अन्त नहीं है । भोग भी तप है, विष्णुवर्धन !

विष्णु—हः हः, भोग भी तप है ! कहीं आज प्रातःकाल मद्य का अधिक सेवन तो नहीं कर आए हो !

वत्स—कवि-हृदय की उमंग को मद्य के उत्तेजन की आवश्यकता नहीं है, विष्णुवर्धन ! मैं सत्य कहता हूँ ज्ञान और विवेक के प्रकाश में भोगा हुआ भोग तप है, मुक्ति की प्रथम सीढ़ी है, कंचन काया को शुद्ध करने के लिए अग्नि-प्रवेश है ।

विष्णु—ऐसा है तो ब्राह्मण से क्षत्रिय का कोई विरोध नहीं—विष्णु और वत्स दोनों हाथ में हाथ लिए पुरुषार्थ के समर-क्षेत्र की ओर बढ़ेंगे ।

[विष्णुवर्धन वत्स भट्ट का हाथ अपने हाथ में लेता है—

लेकिन वत्स फिर हाथ अलग कर लेता है]

वत्स—समर-क्षेत्र में हाथ में हाथ लेकर नहीं बढ़ा जा सकता, मित्र ! मेरी समर-भूमि तुम से भिन्न है ।

विष्णु—तुम किस क्षेत्र में पौरुष प्रदर्शित करना चाहते हो ?

वत्स—मैं उज्जयिनी की, अप्सराओं को लज्जित करने वाली, प्रसिद्ध नर्तकी कंचनी को पराजित करना चाहता हूँ ।

विष्णु—छिः, पुरुष होकर नर्तकी से अंग-विक्षेप में प्रतिद्वन्द्विता करोगे ?

वत्स—रण-भूमि में अस्त्र-संचालन से कठिन है रंगभूमि में भाव-प्रदर्शन करना । संगीत, नृत्य और काव्य की साधना लज्जाजनक नहीं है । खड्ग का संचालन सरल है, किन्तु वीणा और मृदंग के सुर-ताल में पदों के घुंघरुओं के बोलों का सामंजस्य करना कठिन है । कला तो भारतीय जीवन का प्राण है । परम्, भट्टारक, परम् भागवत सर्व राजोच्छेता, आसमुद्रक्षितीश, स्वर्गीय समुद्रगुप्त विक्रमादित्य रणभूमि में यम को परास्त करने की क्षमता रखते थे तो वीणा-वादन में नारद से होड़ लगा सकते थे—तभी तो उन्होंने अपनी मुद्राओं पर अपनी वीणा-वादन-रत छवि मुद्रित कराई थी ।

विष्णु—राज सम्राट समुद्रगुप्त जीवित होते तो तुम्हारे श्रीमुख से प्रशस्ति सुनकर दशपुर तुम्हें पुरस्कार-स्वरूप प्रदान कर देते

और दशपुर के स्वामी बनकर तुम विष्णुवर्धन को निर्वासित कर देते ।

वत्स—दशपुर के विषयपति के सुपुत्र विष्णुवर्धन का बालसखा होना ही वत्सभट्ट के लिए सबसे बड़ा गौरव है ।

विष्णु—किन्तु क्या आकांक्षाओं के पंख काट देना वांछनीय है । विष्णुवर्धन की आकांक्षा दशपुर के प्राचीर को तोड़ कर वर्षा ऋतु की वेगवती प्रार्वत्य सरिता के समान दौड़ना चाहती है । दे सकोगे मेरा साथ ?

वत्स—मैं तो कह चुका हूँ—मैं तुम्हारा अनुचर हूँ । मुझे तुम अपने अस्तित्व में लीन कर लो जैसे गंगा ने यमुना को कर लिया है । हमारे व्यक्तित्व अलग भी रहेंगे और एक सीमा पर मिल भी जाएँगे । वहीं आदर्श का प्रयाग बसेगा ।

विष्णु—किन्तु काल के महासमुद्र में सभी जीवन-धाराएँ समाप्त हो जाती हैं ।

[घबराए हुए मारुत का प्रवेश । मारुत सैनिक वेश में है । उसके शरीर पर घाव हैं—वस्त्र भी कई स्थानों से फटे हुए हैं ।]

मारुत—हाँ, भैया, काल के कठोर जबड़े एक दिन सभी को चबा जाते हैं इसलिए उसके क्रूर प्रभाव पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए ।

वत्स—आकाश के अभिशाप की भाँति तुम क्या बोल रहे हो, मारुत !

मारुत—मारुत ही नहीं बल्कि दशों दिशाएँ रँधे हुए कण्ठ से कह रही हैं कि गुप्त-साम्राज्य के गुरुङ्गध्वज की रक्षा में संलग्न विष्णुवर्धन के पिताश्री एरण के रणस्थल में दूणों के शवों की शैया पर चिर-काल के लिए निद्रामग्न हो गए ।

विष्णु—निद्रामग्न हो गए, काल के कठोर जबड़े उन्हें चबा गए—इस निर्मम संसार में अपने अबोध पुत्र को नितान्त अकेला...

वत्स—(बात काटकर) अकेला छोड़कर चले नहीं गए । उनका बलिदान पुत्र का रक्षा-कवच बनेगा, प्रेरणा बनकर पराक्रम उसे गौरवगिरि पर चढ़ाएगा । बन्धु, मालव-वीर स्वजनों के वीर-गति प्राप्त करने पर विचलित नहीं होते ।

विष्णु—ठीक कहते हो वत्स, मालव विचलित नहीं होते, उनके वक्षस्थल में हृदय के स्थान पर लोहखण्ड रखा हुआ है । विष्णुवर्धन के लोचन ज्येष्ठ की दोपहरी की भाँति प्रज्वलित होंगे, सावन के आकाश की भाँति द्रवित नहीं । उमका हृदय नामक लोह-खण्ड भगवान् भास्कर का भाग बनकर जलेगा ।

वत्स—एवमस्तु ! निराशा के घनाधकार को समाप्त करने के लिए प्रखर, तेजस्वी, प्रज्वलित, अनुत्पन्न, चिरतृप्ति और दुर्दमनीय यौवन की आवश्यकता है । बर्बर, हिंसक और अत्याचारी विदेशियों को पावन भारतभूमि से निर्वासित करने के लिए तुम महाकाल का रूप धारण करो, विष्णु !

मारुत—और विष्णुवर्धन का आदेश पाकर मालव-जन महाकाल के गए बनकर दैत्य-दल का संहार करने चल पड़ें ।

विष्णु—निश्चय ही, ऐसा होगा । (म्यान से तलवार निकालकर) महाकाल के इस बिजली के समान चमकने वाले अस्त्र की शपथ खाकर कहता हूँ कि बर्बर हूणों को भारत की सीमा से निर्वासित किए बिना अब यह अस्त्र म्यान में मुँह नहीं छिपाएगी ।

वत्स—विश्व-विजयी अलक्षेन्द्र की विशाल-वाहिनी के प्रवाह को रोक देने वाले मालव हूणों का काल बनेंगे ।

मारुत—तो अब मालवों को अपने हाथ से हँसिए को विसर्जित करना पड़ेगा ।

विष्णु—नहीं बन्धु, खड्ग और हँसिया दोनों ही मालव-जीवन के सहायक सखा हैं । युद्धकाल में आत्मनिर्भर रहने के लिए आवश्यक है कि पृथ्वी के उदर से अन्न प्राप्त करने में हम प्रमाद न करें ।

वत्स—आयुध-जीवी के साथ ही हमें कृषिकर्मी भी बनना पड़ेगा । सम्पूर्ण विश्व को आतंकित करने वाले हूणों को परास्त करना एक दो दिन का कार्य नहीं है । हमें सुदीर्घ काल तक दृढ़तापूर्वक साधना करनी पड़ेगी ।

मारुत—यह तो ठीक है किन्तु क्या कार्यों के विभाजन से सुविधा नहीं होगी ? कृषिजीवी अन्न उत्पन्न करें, श्रमजीवी अस्त्र-निर्माण करें और आयुधजीवी शत्रु से लोहा लें ।

त्रिष्णु—कार्यों का विभाजन बुरा नहीं है—लेकिन किसी नागरिक का जीवन एकांगी हो जाना देश के व्यापक हित में हानिकारक है । प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह कृषिजीवी हो चाहे आयुधजीवी, सैनिकवृत्ति में पारंगत होना आवश्यक है । श्रम को गौरवान्वित करने के लिए मैं मालवों के राष्ट्र-ध्वज पर हँसिए को स्थान दूंगा ।

मारुत—इसका अर्थ हुआ हम गुप्त साम्राज्य के गरुड़-ध्वज को मान्यता नहीं देंगे ।

त्रिष्णु—निश्चय ही, जनता सम्राटों की मुखापेक्षी नहीं रहेगी । उसे अपनी शक्ति पर निर्भर रहकर देश के शत्रु से संग्राम करना होगा । अब साम्राज्य के नाम पर हम जन-मन को प्रार्कषित नहीं कर सकते ।

मारुत—किन्तु मालवगण ने गुप्त साम्राज्य की छत्र-छाया स्वीकार की थी ।

त्रिष्णु—वह विदेशियों की लोलुप लालसा को ताड़ित करने के लिए मालवों की सद्भावना थी ।

वत्स—आज तो भारतीय एकता उस काल से भी अधिक आवश्यक है ।

त्रिष्णु—हाँ है, यदि गुप्त-सम्राट जनता के सुख दुःख में सम्मिलित हों, अपने अवशेष ऐश्वर्य और वैभव को जनता के सुखों के मोल पर सुरक्षित रखने को प्रस्तुत न हों तो मालव आज भी गुप्त सम्राट के

साथ होंगे । गणतन्त्र के प्रतिष्ठित लिच्छवियों के वंश का रक्त दैवयोग से गुप्त वंश में भी संचारित हो गया था । उसीने परम भागवत समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य जैसे महाप्राण, पराक्रमशील, उदार-चेता सम्राटों को जन्म दिया, जिन्होंने राज-हित और जन-हित में अन्तर नहीं किया, किन्तु वंशानुक्रम से संचित धन-वैभव ने आज के सम्राट को विलास और आलस्य के गर्त में पटक दिया है । उसका नाम आज जनता को अनुप्राणित नहीं कर सकता ।

मारुत—तब हम किसके नाम पर जन-संगठन करेंगे ?

विष्णु—स्वयं जनता के नाम पर ।

वत्स—और हमारा नायक राजा नहीं जनेन्द्र होगा ।

मारुत—तो मुझे बोलने दो—जनेन्द्र विष्णुवर्धन की जय !

विष्णु—बन्धु, अभी जय बोलने का समय नहीं आया है । जय-घोष में अपनी शक्ति लगाने की अपेक्षा माताजी को पिताजी के वीर-गति पाने का समाचार पहुँचा देना अधिक आवश्यक है ।

वत्स—किन्तु यह कठिन कार्य कौन करे ? मेरा तो मन काँपता है ।

मारुत—और मेरा भी !

विष्णु—किन्तु सत्य के सूर्य को प्रकट होने से हम रोक नहीं सकते । तुम साथ चलो—मैं स्वयं माताजी को यह दुःखद समाचार सुनाऊँगा । वह पृथ्वी माता के समान धैर्यवान, सहनशील और सुदृढ़ है । उनमें बख के समान कठोर समाचार को सहन करने की शक्ति है ।

[तीनों का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

द्वितीय दृश्य

[स्थान—विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) के भवन का अन्तःपुर ।
सुसज्जित कक्ष में मंदाकिनी गीता पाठ कर रही है । उसके
सामने एक थाज में पूजा को सामग्री रखी है जिसमें कनेर
के पुष्प और बेलपत्र स्पष्ट रूप से दृष्टि-गोचर हो रहे हैं ।]

मंदाकिनी—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यायो न शोषयति मारुतः ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्यः सर्वगतः स्थाणु रचलोऽयं सनातनः ॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयम विकार्योऽयमुच्यते ।

तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचिनुमर्हसि ॥

[पार्वती का प्रवेश वह अभी स्नान करके आई हैं । दुग्ध
के समान धवल साड़ी और लाल कमल के समान लाल
चोली के अतिरिक्त और कोई वस्त्र शरीर पर नहीं है । बाज
अच्छे श्वेत और आधे काले हैं मानो दिन, रात का संगम
हो । उनके हाथ में स्वर्ण कज्जल है ।]

पार्वती—अरी मंदाकिनी, तू तो यहाँ गीता-पाठ में यह भी भूल गई कि
मंदिर जाना है ।

मंदाकिनी—माँ, आज मनके आकाश में उदासी और निराशा की
घटाएँ न जाने कहाँ से घुमड़कर छा रही हैं, उन्हें ही विछिन्न
करने के लिए पवन से भी प्रबल गीता के वचनों को अंतःकरण में
संचारित कर रही हूँ । [पूजा का थाल लेकर उठती है]

पार्वती—गीता ! वास्तव में यह घोर निराशा के अंधकार का नाश करने वाला आशा-प्रदीप है, किन्तु क्या भारत—भगवान कृष्ण की प्रतिभा पर पुष्प चढ़ाने वाला भारत—गीता को धर्म-पुस्तक मानकर इसका पाठ करने वाला भारत—इस ज्ञान के प्रकाश में अपने जीवन को चला रहा है ? धर्म-भीरु भारत श्रद्धाहीन, विश्वासविहीन हृदय से केवल रूढ़ि-पालन-रूप पूजा-पाठ करता है । वास्तविक देवता को भूलकर केवल प्रस्तर-प्रतिमा के चरणों पर मस्तक पटक रहा है ।

मंदाकिनी—ऐसा क्यों समझती हो माँ ! भारत आज भी मूर्ति के अंतर में सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त चैतन्य को देख रहा है । इन धर्म-पुस्तकों के काली मसि से लिखित अक्षरों में महाज्योति की किरण वह आज भी देवता है । गीता से आज भी आत्मा की अमरता का विश्वास पाकर अन्याय और अत्याचार से संग्राम करने को वह प्रस्तुत है ।

[विष्णुवर्धन और वत्स का प्रवेश और पार्वती के चरण-स्पर्श करना ।]

पार्वती—यवन और अग्नि के समान मित्रता के प्रगाढ़ सम्बन्ध में बँधे हुए दोनों सखा अपने पराक्रम से विनाशकारी शक्तियों का नाश करो, यही मेरा आशीर्वाद है ।

वत्स—आपके आशीर्वाद का संबल हमें कर्तव्य-रत रहने की दृढ़ता देगा, इसमें हमें सन्देह नहीं ।

पार्वती—विष्णु, तू क्यों प्रतिमा की भाँति निश्चल और नीरव है ।

विष्णु—माँ !

[विष्णुवर्धन पार्वती के कंधे पर सिर रख देता है । उसकी आँखों से आँसू भरने लगते हैं ।]

पार्वती—ऋषा हुआ, बेटा !

मंदाकिनी—दुआ क्या है, भैया !

[त्रिष्णुवर्धन चुप रहता है। उसकी आँखों के अश्रु रुकते नहीं हैं। पार्वती जल-कलश मंदाकिनी को देकर त्रिष्णुवर्धन के अश्रु आँचल से पोंछती है।]

मंदाकिनी—सूर्य को किसी ने अश्रु-पात करते नहीं देखा।

पार्वती—मालव-पुत्र की आँखों में मालव-जननी जल नहीं ज्वाला देखना चाहती है।

वत्स—माँ, मालव पर्वत के समान अडिग हूँ किन्तु पितृ-वियोग भी उनके नयनों में जल का एक कण भी न ला सके ऐसे हृदयहीन तो वे नहीं हैं।

पार्वती—(ऊपर दृष्टि करके) तो तुम कर्तव्य की बलिबेदी पर चढ़ गए ! आकाश में एक नक्षत्र की वृद्धि हो गई है।

[पार्वती की आँखों से अश्रु नहीं बहते, अपितु अपूर्व ज्योति चमकती है। मंदाकिनी के हाथ से पूजा का थाल और कलश छूट जाता है।]

मंदाकिनी—तुम कहते क्या हो, वत्स !

वत्स—मैं ठीक कहता हूँ। मंदाकिनी, हूणों के सैन्य-दल का संहार करता हुआ मालवसिंह शत्रु के शवों की सीढ़ी बनाकर स्वर्ग चला गया।

मंदाकिनी—ये बर्बर विदेशी हूण, यह निर्दय दैत्य-दल, क्या आंधी की भाँति भारत के सौभाग्य-श्री को लूटता हुआ बढ़ता ही जाएगा। क्या इनका मद-मर्दन करने वाला एक भी वीर भारत में नहीं है !

त्रिष्णु—है क्यों नहीं, बहिन ! मैं माँ की ज्वाला-मुखी-सी प्रज्वलित आँखों की शपथ लेकर कहता हूँ कि इन बर्बर विदेशियों के आतंक से भारतभूमि की रक्षा करूँगा।

पार्वती—रक्षा करोगे और अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लोगे।

विष्णु—हाँ, माँ, मेरे श्वासों का संकल्प है कि मैं पिताश्री की मृत्यु का प्रतिशोध लेकर ही शांत नहीं हो जाऊंगा, बल्कि भारत माँ के वक्ष-स्थल पर अपने अपावन और कठोर पाँव रखने की उद्दण्डता करने वाले मशंघ विदेशियों से भारतभूमि को मुक्त करूँगा !

पार्वती—तो मालव-जननी पति के वीर-गति पाने पर भी शोक नहीं करेगी । मृत्यु के नृशंस कर पति से सहचरी को पृथक् नहीं कर सकेंगे । मंदाकिनी, मेरी माँग में ऊषा की मुसकान से भी अधिक लाल कुंकुम भर ।

मंदाकिनी—बेटी माँ की माँग में सिद्धर भरे !

पार्वती—हाँ बेटी, जिस तरह बेटी को माँ श्वसुरालय भेजती है इसी तरह आज तू मुझे सोलह शृंगारों से सजाकर अग्नि-रथ पर बिठाकर बिदा देगी ।

विष्णु—धरा के समान धैर्य-शालिनी माँ तुम भी विचलित हो उठी हो !

पार्वती—नहीं बेटा, मालव-माँ, मालव-कन्या, मालव-पत्नी धर्म-पथ से विचलित नहीं होती । मैं ज्वाला के रथ पर आरूढ़ होकर पति का अनुगमन करूँगी ।

वत्स—यही तो भय हमें था कि माँ हमें अकेला छोड़कर सती होना चाहेंगी ।

पार्वती—अकेला छोड़कर ? क्या मेरी संतान को आज भी माँ की अंगुली पकड़ कर चलने की आवश्यकता है ?

विष्णु—माँ के बिना बेटा अपने प्रण का पालन कैसे करेगा ?

पार्वती—तुम्हारी माँ वायु में व्याप्त होकर प्रत्येक पल तुम्हें आशीर्वाद देगी, तुम्हारे संकल्पों को बल प्रदान करेगी ।

विष्णु—किन्तु मानव की चेतनामय मिट्टी एक सान्त्वनामय अवलंब की अपेक्षा करती है ।

पार्वती—भारतभूमि की नारी में अपनी जननी के दर्शन करो, विष्णु !

उसकी मान और लाज की रक्षा तुम कर सकोगे तो तुम्हारी जननी को स्वर्ग में शान्ति मिलेगी ।

त्रिष्णु—नारी जाति की लाज एक आपका विष्णु ही नहीं प्रत्येक भारतीय करेगा । इसी भारत में एक द्रोपदी के अपमान ने अठारह अश्वीहिणी सेना का रक्त पिया था ।

[सहसा सुहासिनी का प्रवेश । सुहासिनी सोलह-सत्तरह वर्ष की युवती है । उसके शरीर पर बहुमूल्य वस्त्राभूषण हैं किन्तु बहुत अस्त-व्यस्त स्थिति में हैं । उसके बाल बिखरे हुए हैं, हाथ में छुरी है ।]

सुहासिनी—मिथ्या, सर्वथा मिथ्या, यह वह भारत नहीं है जहाँ एक नारी के अपमान का प्रतिशोध अठारह अश्वीहिणी सेना का रक्तपान करने पर भी पूर्ण नहीं हुआ था ।

पार्वती—तुम कौन हो, पुत्री ?

सुहासिनी—मैं एक प्रताड़ित मालव-कन्या हूँ ।

मंदाकिनी—तुम किस कुल की कीर्ति हो ?

सुहासिनी—मेरे कुल के कीर्तिवन्ध को ग्रहण लग गया है । कलंक के समुद्र में डूब गया है उसका इतिहास । आज तो मैं एक निराश्रित और प्रपीडित मालवकुमारी हूँ जो अपनी मान-रक्षा के लिए दशपुर के विषयपति के भवन में शरणार्थिनी के रूप में आई हूँ । मिलेगी शरण उसे ?

त्रिष्णु—मालव-कन्या होकर भी मालव-कुल के स्वाभाविक स्नेह पर शंका करती हो ? मालव तो शरण में आने पर शत्रु की भी रक्षा करता है ।

सुहासिनी—किन्तु मैं एक मालव-कुल के विनाश की कामना लेकर आई हूँ ।

वत्स—किस मालव-कुल की ?

सुहासिनी—अपने ही कुल की ।

पार्वती—अपने ही कुल की ?

सुहासिनी—हाँ, क्योंकि वह देशद्रोही है, शत्रु का सहारा है । जो अपने कुल की कन्या के सनीव का भी व्यापार करने लगे उसके सर्वनाश की आकांक्षा करना क्या पाप है, माँ । मुझे धर्म और देश प्रिय है ।

पार्वती—तो बेटी, धर्म और देश पर बलि होने को उत्सुक हृदय को आश्रय देना इस घर का कर्तव्य है । विष्णु, परलोक के सोपान पर पाँव रखने के पूर्व तुम्हारी माँ तुम्हें यह उपहार देती है । इसके व्यक्तित्व में भारत के नारीत्व को देखना । प्राण देकर भी इसके मान की रक्षा करना ।

[सुहासिनी पार्वती के चरण-स्पर्श करती है ।

पार्वती उसे उठाकर उसके मस्तक पर हाथ रखती है ।]

पार्वती—बेटी, अपने कोमल हाथों से छुरी को फेंक दो । मेरे पुत्र के हाथों में मालव-कन्याओं की लाज रखने के लिए पर्याप्त बल है । तुम जैसी और भी हजारों लाखों कन्यायें भारत के पौरुष की ओर कातर नयनों से देख रही है । देश के युवक विपत्ति को आमन्त्रण देकर उन्हें आश्रय देने और उनकी रक्षा करने आगे नहीं बढ़ेंगे तो युग-युग की संचित भारत की संस्कृति कहानी बनकर रह जाएगी । (मंदाकिनी से) आज तुम्हारे परिवार से माँ जा रही है किन्तु वह एक स्नेह और साहस की सजीव प्रतिमा देकर जा रही है—इसका आदर करना, बेटी !

सुहासिनी—आप जा कहाँ रही हो माँ ?

पार्वती—ऊपर, आकाश में, जहाँ हूँगे से संग्राम करते हुए वीर-गति पाकर मेरे स्वामी चले गये हैं । तुम दोनों बेटियाँ मेरा श्रृङ्गार करो ।

मंदाकिनी—किन्तु माँ—शिव-मंदिर

पार्वती—हाँ, हाँ, शिव-मंदिर भी चञ्चुगी । आज अन्तिम बार इन पार्थिव हाथों से शंकर की मूर्ति पर बेलपत्र चढ़ाते हुए कामना करूँगी कि महादानी भोले विश्वनाथ मेरी सन्तान को वही तेज और बल प्रदान करें जो उन्होंने पार्वती-पुत्र कार्तिकेय के प्राणों में भरा था । जिस प्रकार कार्तिकेय देवताओं के सेनापति बनकर तारक राक्षस और दैत्यदल का संहार करने में सफल हुए, उसी भाँति मेरा विष्णु भी हूणों का नाश करने में सफल हो । (विष्णुवर्धन से) जाग्रो बेटा, तुम चंदन की चिता तैयार करो ।

विष्णु—माँ !

पार्वती—नहीं बेटा, यहाँ तक अथवा स्नेह का आग्रह नहीं चलेगा । गीता में कहा है—“आत्मा अमर है ।” तुम्हारी माँ मरेगी नहीं । बेटा, हम मृत्यु से भयभीत होने लगे तभी तो हमारी बेटियाँ बर्बर विदेशियों के हाथों लाज लुटाने लगीं । क्या वे मर नहीं सकतीं ? किसलिए वे कलंकित जीवन का बोझ उठाए फिरती हैं ?

सुहासिनी—धन्य हैं आपके ये अमृतमय वचन । मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप जीवित रहकर अपनी वाणी से भारत की नारी जाति का नेतृत्व करें ।

पार्वती—मानव की वाणी की अपेक्षा उसका कर्म अधिक अच्छा नेतृत्व कर सकता है । मुझे जाना ही पड़ेगा । अब विलम्ब असह्य है ।

[पार्वती का प्रस्थान । पीछे-पीछे सभी जाते हैं ।]

[पट-परिवर्तन]

—————

तीसरा दृश्य

[स्थान—वन-पथ । समय—मध्याह्न । जयदेव और उसकी पत्नी उमा पथ पर चले जा रहे हैं । जयदेव हाथ में नांगी तलवार लिए हुए है । दोनों के वस्त्र और शरीर धून-धुमरित हो रहे हैं । जान पड़ता है, बड़ी दूर से अत्रिरत मार्ग चलते आ रहे हैं । उमा अत्यन्त श्रान्त-क्लान्त है । उसके कटि-प्रदेश में भी एक कटार बँधी हुई है । प्रयत्न करने पर उमा से आगे चला नहीं जाता और वह दीर्घ निश्वास छोड़कर एक वृक्ष की छाया में बैठ जाती है । जयदेव को भी रुकना पड़ता है ।]

जयदेव—बहुत थक गई ?

उमा—तो क्या मेरे पाँव यन्त्र हं जो अविराम चलते ही जाएँ । यन्त्र भी तो विश्राम चाहता है ।

जयदेव—विश्राम का अर्थ पूर्ण विराम होगा ।

उमा—इसका भी क्या विश्वास कि आगे बढ़ने का अर्थ भी पूर्ण विराम नहीं होगा ।

जयदेव—यह तो ठीक है कि जीवन की पगडण्डी मरण के वित्तृत उद्यान में समाप्त होती है—किंतु मानव जहाँ जाने की कल्पना से ही भयभीत होता है वहाँ पहुँचकर वह आनन्द प्राप्त करता है ।

उमा—यदि जीवन के उत्तर पार आनन्द है तो तुम मुझे मरण से पराङ्मुख क्यों करना चाहते हो ?

जयदेव—क्योंकि वर्तमान की गोद में भविष्य खेल रहा है । भविष्य के अधरों की मुसकान को माधुर्य और अमरत्व प्रदान करने के लिए वर्तमान को अपनी रक्षा भी करनी पड़ती है—जब तक शिशु भविष्य यौवन नहीं प्राप्त कर लेता वर्तमान उसका

अभिभावक बन कर रहता हूँ । उठो, प्रिये, हमें चलना ही पड़ेगा ।

[उमा शिशु का मुँह चूमती है, उसकी आँखों में आँसू छलछला आते हैं]

जयदेव—ये आँसू वर्तमान की ज्योति छीन लेंगे और यदि वर्तमान ही पथ भूल जाएगा तो भविष्य को कहाँ ठिकाना मिलेगा । हूण गुप्तचर हमारी टोह में हैं, उनकी आँखें हम पर पड़ें इसके पहले ही हमें निरापद स्थान पर पहुँच जाना चाहिए ।

[इसी समय शस्त्रास्त्र-सज्जित चार हूण सैनिकों का प्रवेश !]

एक हूण सैनिक—हम तुम्हें निरापद स्थान में पहुँचा देंगे (साथी सैनिकों से) बाँध लो इन्हें ।

[हूण सैनिक जयदेव और उमा को पकड़ने अग्रसर होते हैं । उमा विद्युत् गति से ओढ़नी को झूझा सा बना कर उसमें शिशु को रखकर पीठ पर कस कर बाँध लेती है और हाथ में कटार लेती है । जयदेव तलवार खींचकर सावधान हो जाता है ।]

जयदेव—जब तक भारतीय युवक के हाथ में असि है तब तक बर्बर हूण तो क्या यमदूत भी उसे बन्दी बनाने का दुस्ताहस नहीं कर सकते । सावधान, आगे बढ़कर असमय अपनी मृत्यु को आमन्त्रित मत करो ।

दूसरा हूण—एक मूर्ख भारतीय श्वान चार-चार हूण सिंहों को चुनौती देता है ।

पहला हूण—इतनी जल्दी भी तो क्या है तुम्हें इस सुख-वैभव और विलास से परिपूर्ण संसार से प्रस्थान करने की । मेरा कहना मान इस सुन्दरी को प्रसन्न मन से हमें दे डाल और प्राण-दान के साथ

द्रव्य-दान भी ग्रहण कर ।

[जयदेव उत्तर नहीं देता और तलवार से आक्रमण करता है । चारों हूण सैनिक उस पर आक्रमण करते हैं । हूण सैनिक विशालकाय होने पर भी जयदेव की स्फूर्ति और अस्सि-सम्बालन के कौशल में उसे पराजित नहीं कर पाते । उमा प्रशंसा भरे नेत्रों से जयदेव के रण-कौशल का निरीक्षण कर रही है । इसी समय ७-८ हूण सैनिकों के संरक्षण में एक शिविका आती है । एक हूण सैनिक के हाथ में हूण पताका है । शिविका में बैठी हुई कंचनी पट उठा कर देखती है ।]

कंचनी—ठहरो !

[शिविका भी रुकती है और तलवारें भी ।

कंचनी शिविका में से उतर कर आती है]

कंचनी—क्या हूणों को इसी वीरता पर अभिमान है ?

एक हूण—देवि, प्रीत और रण-नीति में कोई कार्य विजित नहीं है ।

दूसरा हूण—आप अपने गन्तव्य स्थान को ज.इए और हमें राज-काज करने दीजिए ।

कंचनी—मुझे इस विविध राज-काज में हस्तक्षेप करना ही पड़ेगा क्योंकि अन्याय का विरोध करना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है । मैं अपनी आँखों के सामने एक सती और भद्र महिला पर अत्याचार नहीं होने दूंगी ।

पहला हूण—हम इस सुन्दरी पर अत्याचार नहीं करेंगे, बल्कि इसे प्रत्येक प्रकार के सुख और ऐश्वर्य की स्वामिनी बनाएंगे ।

कंचनी—किन्तु जब इसे तुम्हारे सुख का स्वर्ग नहीं चाहिए तो
बरबस.....

पहला हूण—(बात काट कर) हाँ बरबस ही । पराजित जाति की नारियों को विजेता सैनिकों के मनोरंजन का खिलौना बनना ही चाहिए।

कंचनी—किस न्याय से ?

पहला हूण—शक्ति के न्याय से, तलवार के न्याय से । हूणों की भुजाओं में बल होगा तो इस निरीह युवती को तो क्या भारत के बड़े-बड़े भूपालों के अन्तःपुरों की राजकुमारियों और रानियों को वे अपने चरणों की दासी बनाएंगे ।

कंचनी—छिः, लज्जा नहीं आती तुम्हें ऐसे वचन मुंह से निकालते हुए ? आज तक मैं हूणों की वीरता का सम्मान करती थी । जिस जाति की विजय-पताका भूमण्डल के अनेक राष्ट्रों में गर्व के साथ फहराई है क्या उसमें शील और नीति नाम के लिए भी नहीं है ? कैसा भ्रम था मेरा कि मैंने सोचा कि आक्रान्ता होते हुए भी हूणों ने मानवता को तिलांजलि नहीं दी है, यदि ये मनुष्य बनकर भारत में आते तो भारत की महान संस्कृति इनके पाद-प्रहारों को विस्मृत कर अपनी उदार, करुणामय और वात्सल्यपूर्ण गोद में इन्हें बिठा लेती और ये भी भारतीय बनकर इस देश के हित को ही अपना हित समझते ।

कंचनी के साथ आए हुए हूण सैनिकों का नेता—देवि, हमें विलम्ब हो रहा है ।

कंचनी—किन्तु यह डोली अभी आगे नहीं बढ़ेगी ।

वही हूण—देवि, युवराज की आज्ञा की अवहेलना हमारे सामर्थ्य के बाहर है ।

कंचनी—तो तुम मेरा शव यहाँ से ले जा सकोगे ।

वही हूण—देवि, भारतीय नारी को हूण सैनिक एक खिलौने से अधिक महत्व नहीं देते, फिर भी आप युवराज की सम्माननीय अतिथि हैं । इसलिए हम आपका सम्मान रखना चाहते हैं ।

कंचनी—युवराज की सम्माननीय अतिथि की आज्ञा में तुम्हें युवराज की आज्ञा का आभास होना चाहिए ।

वही हूण—किन्तु, इस प्रकार की आज्ञा देकर आप स्वयं भी युवराज की कोपभाजन बनेंगी ।

जयदेव—देवि, आप हमारे कारण संकट मोल क्यों लेनी हैं ! इस तलवार की धार हमारे भाग्य की रेखाएँ रक्त के अक्षरों में अंकित करेगी ।

उमा—जो नारी आत्म-गौरव की देहली को उलांघ कर देश के शत्रु की शिविका को सुशोभित करने में आनन्द पाती है उसे पराई पीड़ा से पीड़ित होने की आवश्यकता ही क्या है ?

कंचनी—भद्रे, तुमने मेरे हृदय पर विष से बुझा हुआ तीक्ष्णतमशर संचालित किया है, किन्तु मैं तुम्हारे पैने बाण को प्राणों में सम्हाल कर रखूंगी । मैं नीच हूँ, पतित हूँ, देशद्रोहिणी हूँ किन्तु फिर भी मुझ में इतनी लाज शेष है कि भारत की सती और भद्र महिला के सम्मान की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझूँ ।

पहला हूण—आपकी इच्छा क्या है ?

कंचनी—यही कि इन्हें अपने मार्ग पर जाने दिया जाए ।

दूसरा हूण सैनिक—अर्थात् आप चाहती हैं कि हूण सैनिक शत्रु पर दया करें ।

जयदेव—भारतीय युवक शत्रु की दया पर जीवित रहने की अपेक्षा मृत्यु का आलिङ्गन करना श्रेयकर समझता है । (कंचनी से) आपकी सद्भावना के लिए धन्यवाद देते हुए भी हम किसी से दया की भिक्षा नहीं माँगेंगे ।

उमा—भारतीय नारी अपने सतीत्व की रक्षा स्वयं करती है । यदि मेरे पति के हाथ का खड्ग मेरी रक्षा नहीं कर सकेगा तो मेरी सहचरी कटार मेरे प्राणों को स्वर्ग पहुँचाने के लिए वाहन बनेगी ।

जयदेव—हम उस एरण नगरी के वासी हैं जिसके एक भी प्राणी ने हूण आततायी के सम्मुख मस्तक नहीं झुकाया, भले ही सम्पूर्ण एरण नगरी ज्वाला की लानाती लाशों में भस्म हो गई। मृत्यु से हम.....

कंचनी—(बात काटकर) क्या कहा, एरण नगरी भस्मसात हो गई ?

उमा—हां देवि, एरण के युद्ध में गुप्त सम्राट की सेना पराजित हो गई तब विजयनमाद में प्रमत्त हूण युवराज मिहिरकुल ने हाथी पर स्वर्ण की अंजारी पर आसीन होकर नगरी में प्रवेश किया, किन्तु उसने आश्चर्य और क्रोध से देखा कि एक भी नागरिक ने उसका स्वागत नहीं किया, प्रत्येक भवन का द्वार बन्द था और सब ओर श्मशान का सन्नाटा था। मिहिरकुल की आंखें क्रोध से प्रज्वलित हो उठी और उसने आज्ञा दी कि इस उद्धत नगरी में आग लगा दी जाए।

कंचनी—निश्चय ही यह नीचता की पराकाष्ठा है।

उमा—किन्तु यह नीचता यहीं समाप्त नहीं हुई। जब जलते हुए घरों से लोग बाहर निकलने लगे तो बर्बर हूण उन्हें पकड़ कर जीवित ही लाशों में फेंकने लगे।

जयदेव—और तब मानाश्रों ने अपने हाथों से अपने बालकों के गले घोंट दिए, पतियों ने अपने हाथ में पत्नियों के मस्तक काट डाले, बहनों ने भाइयों के हाथों में तलवारें सोंपते हुए कहा—पहले हमारे रक्त से होली खेलो फिर शत्रु-रक्त के महासमुद्र में गोते लगाओ।

उमा—इस तरह हमारे जैसे दो चार अभागों को छोड़ कर जो उस समय नगरी के प्राचीर में नहीं थे शेष सभी वीर-गति को प्राप्त हो गए।

कंचनी—धन्य हैं एरण नगरी के अमरवीर ! उनका बलिदान व्यर्थ

नहीं जावेगा । यह भारतवासियों के प्राणों में प्रतिहिंसा की ऐसी भयानक ज्वाला प्रज्वलित करेगा जिसमें हूणों की आसुरी सत्ता रूढ़ा के लिए समाप्त हो जाएगी ।

हूण सैनिक—अब अधिक विलम्ब हमारे लिए प्राण-घातक सिद्ध होगा । आप शिविका में आसीन होकर हमें प्रस्थान करने की आज्ञा दीजिए ।

कंचनी—हाँ, आज्ञा देने की आज्ञा का मुझे पालन तो करना ही पड़ेगा, क्योंकि मैं देखना चाहती हूँ कि मिहिरकुल की छाती में कितनी कटोरता है । किन्तु प्रस्थान करने के पूर्व मैं इस दम्पति के सम्मान की सुरक्षा का विश्वास तुमसे चाहती हूँ ।

पहला हूण—देवि, यदि आप यह वचन दें कि आप युवराज से यह नहीं कहेंगी कि हूण सैनिकों ने किसी भारतवासी पर दया की है तो हम आपकी आज्ञा मानने को प्रस्तुत हैं ।

दूसरा हूण—हाँ, देवि हूण सैनिकों के न्यायशास्त्रों में प्राणदान प्राणापहरण से भी बड़ा अपराध है ।

कंचनी—इस अपराध के दण्ड से तुम्हारी रक्षा करना मेरा धर्म है ।

पहला हूण—(जयदेव और उमा से) तो जाओ, आज तुम्हारे नक्षत्र अच्छे हैं ।

कंचनी—(आक्रमणकारी हूणों से) तुम्हें भी मेरे साथ चलना होगा (अपने साथी हूणों से) तो अब चलो, मैं भी शीघ्रातिशीघ्र अपने लक्ष्य पर पहुँचना चाहती हूँ ।

[कंचनी डोली में बैठती है । जयदेव और उमा एक ओर और दूसरी ओर कंचनी व सारे हूण प्रस्थान करते हैं ।]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[एरण के रण-स्थल के निकट हूणों का सैनिक शिविर । समय—रात । आकाश में पूर्ण चन्द्र हँस रहा है । चन्द्रिका चाँदी की चादर के समान पृथ्वी पर बिछी हुई है । खुले सुविस्तृत समतल क्षेत्र में सुन्दर जाजमों और बहुमूल्य कालीनों की बिछात की गई है । सुन्दर कालीन पर मसंद के सहारे हूण युवराज मिहिरकुल विराजमान है । उसके पोछे खड़ी हुई कुछ युवतियाँ झीने और त्रिल वस्त्र पहिने हुए पंखा झल रही हैं । दोनों पार्श्व में मधुबालाएँ हाथ में सुरा की सुराहियाँ और पात्र लिए हुए अपने रूप, यौवन और मधुर मुस्कान से संपूर्ण वातावरण को मादक बना रही हैं । मिहिरकुल से कुछ दूर धन्यविष्णु (हूणों के आधीन मालवा का मांडलिक) बैठा हुआ है । उसी के पास हूण सेनापति बैठा है । मिहिरकुल के हाथ का मद-पात्र रिक्त हो चुका है । धन्यविष्णु और सेनापति के पात्र भी रिक्त हैं ।]

मिहिरकुल—जीवन एक नशा ही तो है, धन्यविष्णु ! एक नशा, एक तूफान, एक पागलपन हमें सहस्रों कोस से यहाँ खींच लाया है । वही नशा हमें रक्त की भीषण होली खिला रहा है ।

[मिहिरकुल मधुबाला की तरफ देखता है]

मिहिरकुल—पात्र रिक्त न होने दो, मधुबाले !

[मधुबाला मिहिरकुल के पात्र में मदिरा ढालती है]

मिहिरकुल—मालवपति धन्यविष्णु और सेनापति का पात्र भी भर दो । मेरा साथ देने वाले को मेरी ही तरह प्रमत्त होना पड़ेगा ।

[मधुबाला धन्यविष्णु और सेनापति के पात्र भी भरती है]

धन्यविष्णु—युवराज की स्नेह-दृष्टि मदिरा से कम स्फूर्तिदायक नहीं है ।

सेनापति—युवराज के संकेतों से अधिक उत्तेजक वस्तु संसार में कुछ नहीं है ।

मिहिरकुल—(मदिरा का घूंट पीकर) मिहिरकुल के सामने कविता न करो । मैं कविता के कल्पनालोक में नहीं वास्तविकता की कठोर पृथ्वी पर पाँव रखकर चलता हूँ, और मानता हूँ कि श्रान्त जीवन और क्लान्त मन को नवजीवन, नवीन पुलक, नवीन-स्फूर्ति यौवन-मदमाती मधुबाला की छलकती हुई आँखों की सुरा या उसके आग जैसे उज्ज्वल हाथों से ढाली हुई लोहू-सी लाल मदिरा ही प्रदान करती है । पियो धन्यविष्णु, पियो सेनापति—केवल देखने से तृप्ति नहीं होगी । पियो, मदिरा पीने के लिए है, फूल सूंघने के लिए है और सौन्दर्य भोग के लिए है ।

धन्यविष्णु—(मदिरा का घूंट लेने के पूर्व) युवराज की अमर कीर्ति की कामना करते हुए मैं मदिरा-पान करता हूँ ।

सेनापति—(मदिरा का घूंट लेने के पूर्व) युवराज के चरणों में संसार भर के राजमुकुट लोटें इसकी कामना करते हुए मैं मदिरा-पान करता हूँ ।

[धन्यविष्णु और सेनापति दोनों ही मिहिरकुल का मदपान में साथ देते हैं ।]

मिहिरकुल—(धन्यविष्णु से) तुम मेरे सच्चे साथी हो, धन्यविष्णु ! सेनापति से भी अधिक प्रिय हो तुम मुझे । तुम्हारी सहायता से ही मैं गुप्त साम्राज्य की सेना पर विजय पा सका हूँ । परम पराक्रमी गुप्त सम्राट् भानुगुप्त और महाबलाधिकृत गोपराज अपने प्राणों की बलि देकर भी हमारी सेना का वेग नहीं रोक सके ।

धन्यविष्णु—मुझे इस विजय का थोड़ा-सा भी श्रेय देना आपकी कृपा है, किंतु मैं जानता हूँ कि युवराज के नेतृत्व में हूण-सेना संसार की बड़ी-से बड़ी शक्ति को परास्त करने की क्षमता रखती है ।

जिस हूण-सेना की टक्कर से संसार का गर्वोन्मत्त रोम-साम्राज्य भी टिक न सका उससे जरा-जोर्ण और अग्रिमण गुप्त-साम्राज्य कैसे लोहा ले सकता है ?

मिहिरकुलः—गुप्त साम्राज्य के विशाल भवन की आधार शिलाएँ सब गई हैं यह मैं जानता हूँ और यही जानकर मैं भारत जैसे विशाल देश पर अधिकार करने का स्वप्न देख सका हूँ। फिर भी मुझे भारत के सैनिकों ही नहीं सर्वसाधारण की निर्भीकता, साहस और नैतिकता से चकित हो जाना पड़ा है। यहाँ सुई की नोक के बराबर भूमि पाने के लिए भी सहस्रों मस्तकों की बलि चढ़ानी पड़ती है। वीर जाति को मित्र बनाने में मन गौरव का अनुभव करता है और शत्रु बनाने में भी।

सेनापति—निश्चय ही युवराज, भारतवासी अद्भुत साहसी और वीर हैं। इतिहास इस देश के पराक्रम की परंपराओं से परिपूर्ण है। पुरु के पुत्र ने केवल दो हजार अश्ववाहिनी लेकर विश्वविजयी अलक्षेत्र की अपार सेना से पूरी एक रात युद्ध किया था।

मिहिरकुल—स्वयं पुरु ने क्या कम साहस प्रदर्शित किया था ? वह भारत का एक छोटा राजा ही तो था। उसके सम्मुख संसार की श्रेष्ठतम सेना थी तब भी उसने यूनानियों के दांत खट्टे कर दिए थे।

[नेपथ्य में वीणावादन का मधुर स्वर मंझूत होता

है। मिहिरकुल मुग्ध होकर सुनता है]

मिहिरकुल—सैनिक शिविर में यह कौन किन्नरी वीणा-वादन से प्राणों में तूफान उठा रही है ?

धन्यविष्णु—यह किन्नरी नहीं उज्जयिनी की प्रख्यात नर्तकी कचनी है, जो सौंदर्य में उर्वशी और कला की साधना में साक्षात् सरस्वती है।

मिहिरकुल—किन्तु रणस्थल में उसे कौन लाया ?

धन्यविष्णु—यह प्रबन्ध मैंने किया है। युद्ध के संघर्ष के पश्चात् विश्राम

और मनोरंजन की आवश्यकता होती है । सप्त स्वरों के सम्मिश्रण से निर्मित राग-रागनियों का प्रलेप तन और मन के धावों को भर देता है । आज्ञा हो तो कंचनी को उपस्थित करूं ?

मिहिरकुल—नेकी और पूछ पूछ ! लाखों तुरन्त लाखों । हमने रणभूमि में भारत की तलवार की धार की प्रखरता देखली है, विश्राम के क्षणों में भारतीय मदिरा की मादकता का भी अनुभव किया है और अब हम यहाँ की ललित कलाओं की सरसता भी देखना चाहते हैं ।

धन्यविष्णु—मुझे विश्वास है कि भारत की कला युवराज के हृदय में नया उत्साह भरेगी ।

[धन्यविष्णु का प्रस्थान]

मिहिरकुल—अभागा भारत जहाँ अशोक, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और समुद्रगुप्त जैसे मानव-रत्न भी अवतरित हुए हैं, वहीं धन्यविष्णु जैसे नर की खाल पहने हुए श्वान भी । इस कुत्ते को भी पाटली-पुत्र के राजसिंहासन पर बैठने की लालसा है ।

सेनापति—भारत की यही तो सबसे बड़ी निर्बलता है कि यहाँ के विभिन्न भूपालों की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएं उन्हें संगठित होकर विदेशी शक्तियों से अपने देश की रक्षा नहीं करने देतीं । अलक्षेन्द्र को तक्षशिलाधीश आभीर जैसे मित्र मिल गए और हमें भी धन्य-विष्णु जैसे हितचिंतक प्राप्त हो गए हैं ।

मिहिरकुल—ऐसे पामर प्राणियों को पास बैठाने से भी मुझे घृणा है । अपनी चिर पुरातन संस्कृति पर गर्व करने वाले भारतवासी हमें बर्बर, असभ्य और हिंसक कहते हैं, किंतु हम हूणों को इस बात का अभिमान है कि हमने व्यवितगत लाभ के लिए अपनी जाति से विश्वासघात नहीं किया । अपने देश और जाति से विश्वासघात करने वाला मनुष्य गंदी नालियों में रेंगनेवाले कीटों से भी निकृष्ट है । यदि भारत में सभी धन्यविष्णु होते; कोई गोपराज न होता, शत्रु का स्वागत करने की अपेक्षा संपूर्ण नगर को भस्म कराना

स्वीकार करने वाली वीरात्माएँ न होतीं तो मुझे इस देश पर विजय पाने में क्या आनंद आता ? श्मशान पर कोई भी अपना रथ चला सकता है, वीरता तो जीवित जाति की चट्टानी छाती पर चढ़कर जाने में है। मैंने चाहा था कि मगध के राजसिंहासन का लोभ देकर गोपराज को अपना अनुचर बना लूँ किंतु उसने उत्तर भेजा कि त्रिलोक के सिंहासन का प्रलोभन भी उसे अपने देश और राज्य से द्रोह करने की इच्छा उसके हृदय में नहीं जाग्रत कर सकता।

[धन्यत्रिष्णु, कंचनी और वाद्यकारों का प्रवेश]

कंचनी—हूण-कुल कीर्तिचंद्र, पराक्रम-प्रभाकर युवराज को उज्जयिनी की अकिंचन नर्तकी कंचनी प्रणाम करती है।

[कंचनी अभिवादन करती है, उसके साथ ही वाद्यकार भी अभिवादन करते हैं]

मिहिरकुल—बैठो !

[कंचनी और उसके साथी बैठते हैं]

मिहिरकुल—भीलनी की भाँति दूर बैठकर वीणा बजाकर मेरे मन-मृग को तुम खींच रही थीं !

कंचनी—किंतु मृग भीलनी को तान पर मोहित होकर उसकी कुटी में नहीं पहुँचा, बल्कि भीलनी को मृग के पास आना पड़ा।

मिहिरकुल—और मृग ने अधिक के आगे स्वेच्छापूर्वक मस्तक झुका दिया है कि वह उसे धड़ से पृथक करदे।

कंचनी—युवराज शस्त्र-संचालन में जितने निपुण हैं, शब्द-शर छोड़ने में उससे कम नहीं हैं।

मिहिरकुल—किंतु उतना नहीं जितनी तुम स्वरों के शर छोड़ने में। जिन प्राणों को रक्त की अजस्र वर्षा भी शांत नहीं कर सकी उसे तुम अपने नूपुरों की ध्वनि और संगीत की स्वर-लहरियों से निहाल कर दो, सुन्दरी। कोई ऐसा राग छोड़ो, कंचनी, कुछ ऐसा

नाच नाचो, नर्तकी, जो मिहिरकुल के प्राणों में बसने वाले काले नाग को आत्म-विभोर कर दे जिससे वह अपनी जहरीली और हिंसक वृत्ति को भूलकर भूम-भूम उठे। कहते हैं भारतीय संगीत रवि-शशि-नक्षत्रों को भी सम्मोहित कर देता है।

कंचनी—संगीत में अपार शक्ति है तभी तो भारत के अमर महा गायक मोहन भयंकर काले नाग के फन पर खड़े होकर बाँसुरी बजा सके थे, तभी उनकी मुरली की तान पर ब्रजबालाएँ तो क्या धेनुदल भी आनंदविभोर हो उठे थे, किंतु कंचनी तो संगीत के साधना-मंदिर का प्रथम सोपान भी नहीं चढ़ पाई है। संगीत के अगाध सागर से जो दो चार बिंदु मैने पाए हैं उनको उपस्थित करती हूँ।

[कंचनी पैरों में घुँघरू बाँध कर खड़ी होती है। वाद्यकार स्वर मिलाकर वादन प्रारम्भ करते हैं। नाचने और गाने को उद्यत होती हुई कंचनी सर्वथा नूतन ही नारी दिखाई देने लगी है। मिहिरकुल तो उसके रूप और यौवन से ही प्रभावित होकर अपलक देखता रह जाता है]

कंचनी—(नृत्य और गान)

रुनुन भुनुन भुन, रुनुन भुनुन भुन,
पग के पायल बोले रे।
उर अंतर के रंग मंच पर
छवि के पायल बोले रे।

अंग अंग में चंचल यौवन,
भरता नव चेतन पागलपन,
नाच रही स्रप्सरी वासना,
तप, संयम, प्रण डोले रे।

रुनुन भुनुन भुन, रुनुन भुनुन भुन,
पग के पायल बोले रे।

उर-अंतर के रंग-मंच पर
छवि के पायल बोले रे ।

चन्द्रानन पर घूँघट भीना,
दुर्लभ हुआ रूप-रस पीना,
कहते नयन, 'समीरण सत्वर
घूँघट-घन को खोले रे ।'

रुनुन भुनुन भुन, रुनुन भुनुन भुन,
पग के पायल बोले रे ।
उर-अंतर के रंग-मंच पर
छवि के पायल बोले रे ।

मधु से भरी, सुरभिसे सुरभित,
कली कामना से अनुरजित,
बोली मधु-लोभी मधुकर से,
'मधु पीले अलि भोले रे ।'

रुनुन भुनुन भुन, रुनुन भुनुन भुन,
पग के पायल बोले रे ।
उर-अंतर के रंग-मंच पर,
छवि के पायल बोले रे ।

[कंचनी के स्वर की स्निग्धता और सरसता और
अंगों के उद्दीपन पूर्ण विक्षेप मिहिरकुल को
प्रमत्त कर देते हैं । वह उठकर कंचनी की
ओर अग्रसर होता है]

मिहिरकुल—कवनी, तुम्हारे स्वरों के अग्निवाणों ने प्राणों में ज्वाला
फूक दी है । तुम मिहिरकुल की हत्या करने आई हो—मैं तुम्हें अपनी
सबल बाहुओं में बाँधकर चकनाचूर कर दूँगा ।

[कंचनी मिहिरकुल के मार्ग से हटकर एक
मधुबाला की ओट में खड़ी हो जाती है । इसी]

समय किसी हाथी की गगनभेदी चिंघाड़ सुनाई
देती है। मिहिरकुल का ध्यान उधर जाता है।]

मिहिरकुल—सुना कंचनी, यह भी स्वर है, रव है, भैरव, भयानक।
चीत्कार में भी संगीत है।

सेनापति—गुप्त-सेना के जो हाथी पकड़े गए हैं वे ही पार्वत्य पथ से
यहाँ लाए जा रहे हैं। उन्हीं में से कोई पर्वत की चोटी पर से नीचे
गिरा है। कदाचित् यह उसी का चीत्कार है।

मिहिरकुल—कुल कितने हाथी पकड़े गए हैं ?

सेनापति—५०० के लगभग होंगे।

मिहिरकुल—उन्हें गिरि-शिखर पर एकत्रित करो, फिर एक साथ नीचे
लुढ़काओ।

धन्यत्रिणु—इससे तो उन सबका प्राणान्त हो जायगा।

मिहिरकुल—हो जाने दो। मैं देखना चाहता हूँ कि इतने बड़े मरणो-
न्मुख गज-समूह की बिचाड़ मेरे कानों के पर्दों का विदीर्ण कर
सकती है कि नहीं। सेनापति, मैं अभी पर्वत की तलहटी में आता
हूँ, तुम हाथियों को गिराने का प्रबन्ध करो।

[मिहिरकुल का प्रस्थान। सेनापति भी चला
जाता है। कंचनी आश्चर्य से स्तम्भित होकर
खड़ी रहती है]

धन्यत्रिणु—(कंचनी से) पूछो आने सौंदर्य से, मादक यौवन से, कला
की साधना से, कण्ठस्वर की सरसता से, पद-संचालन के स्फुरण
से कि क्या इस अचल पर्वत को डिगाने का सामर्थ्य है किसी में।

कंचनी—इसका उत्तर समय देगा।

[कंचनी वाद्यकारों से प्रस्थान करने का संकेत
करती है। सबका प्रस्थान। रंगमंच पर कोई
नहीं रहता।]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[समय—प्रभात । स्थान—विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) के भवन के आगे का उपवन । स्फटिकशिला पर आसीन सुहासिनी पुष्प-हार रच रही है । उसके निकट कण्डोली में बेला और गुलाब के फूल रखे हुए हैं । विष्णुवर्धन धीमे पाँवों आकर सुहासिनी के नेत्र मूँद लेता है ।]

सुहासिनी—तुम मुझे अंधी बना रहे हो ।

विष्णुवर्धन—हां, क्योंकि तुम्हारी दृष्टि उपवन के अनेकानेक पुष्पों और गगन के अगणित नक्षत्रों में उलझ जाती है ।

सुहासिनी—और तुम चाहते हो कि मैं केवल एक नक्षत्र को अपनी निहारती रहूँ ।

विष्णु—क्या किसी नक्षत्र के ऐसे नक्षत्र हैं ?

सुहासिनी—हां, हैं एक देदीप्यमान नक्षत्र के ।

विष्णु—दर्शन कराओगी उस भाग्यवान नक्षत्र के मुझे ?

सुहासिनी—दिन के प्रकाश में नक्षत्र नहीं दिखते. उसे देखने के लिए रात्रि का अंधकार चाहिए । जिस तरह तुमने मुझे अंधा कर दिया है उसी तरह तुम भी अंधे हो जाओ, तभी तुम्हें हृदय के आकाश में कोई नक्षत्र दिखाई देगा ।

[विष्णुवर्धन सुहासिनी की आँखें मूँदे हुए है लेकिन वह उसके हाथों को हटाने का यत्न नहीं करती और पुष्प-हार बनाने का कार्य भी बन्द नहीं करती ।]

विष्णु—आँखें बन्द रहने पर भी तुम माला गूँथ लेती हो ।

सुहासिनी—और चाहती हूँ कि आँखें मूँदकर ही अपने देवता के गले में माला पहना भी दूँ ।

[एक गुलाब का फूल माला में पिरोते हुए
सुहासिनी की उँगली में सूचिका चुभ जाती है]

सुहासिनी—हूँ हूँ !

[विष्णुवर्धन सुहासिनी का हाथ अपने हाथ में
ग्रहण करके उसकी अंगुली से निकलता हुआ
रक्त अपने मुँह से चूस लेता है ।]

सुहासिनी—मेरा रक्त मधुर लगा तुम्हें !

विष्णु—तुम सजीव माधुर्य हो, सुहासिनी !

सुहासिनी—तो तुम मेरे शरीर का संपूर्ण रक्त पीलो, मेरे मांस को
खालो, मेरी हड्डियों को चूर्ण करके फाँक जाओ ।

विष्णु—मुझे हाड़-मांस का मोह नहीं है ।

सुहासिनी—तो तुमने मेरा रक्तपान क्यों किया ?

विष्णु—तुम्हारा कष्ट दूर करने के लिए ?

सुहासिनी—कष्ट देकर कष्ट दूर करने का प्रयत्न आग लगाकर पानी के
लिए दौड़ने के समान है ।

विष्णु—कष्ट तो सूचिका ने दिया है जिसने चम्पाकली-सी सुकुमार
अंगुली को वेध दिया है ।

सुहासिनी—किंतु जो हृदय को वेध देते हैं वे क्या कुछ भी कष्ट नहीं
देते ?

विष्णु—ऐसा कष्ट तो बड़े भाग्य से मिलता है ।

सुहासिनी—तो बनादो मुझे भी ऐसी भाग्यशालिनी । निकालो खड्ग,
करदो मेरे संपूर्ण तन-मन-हृदय में अग्रणीत घाव । भरदो मेरे
प्राणों में अनंत वेदना जिससे मैं युग-युग चीखती रहूँ ।

विष्णु—तुम चीत्कार करती रहो और मैं आनंद लेता रहूँ ? मैं हूँ
नहीं, आर्य हूँ, और तुम भी आर्य वीरांगना हो, हूणों का आतंक भी
तुम्हारे हृदय को भयभीत नहीं कर सका । क्या तुम्हारे हृदय पर
आघात करने की सामर्थ्य मुझमें है ?

सुहासिनी—हृदय पर आघात करने में कुछ भी पराक्रम नहीं है, मालव-वीर !

विष्णु—तब पराक्रम किस कार्य में है ?

सुहासिनी—पराक्रम का कार्य है हृदय पर राज्य करना । हूणों ने आर्यों के मस्तक काटे, हृदय वेधे, नगरों को जलाया, राज-सुकुटों को भूलुण्ठित किया, किन्तु जन-मन पर राज वे नहीं जमा सके ।

[इस बीच सुहासिनी माला पूरी कर चुकती है]

विष्णु—यही तो हमारे देश के अंधकारपूर्ण भाग्याकाश में एकमात्र आशा की किरण है । आज हम असंगठित और विभाजित हैं, किन्तु शत्रु का अत्याचार ही हमें एकता के सूत्र में बाँधेगा । जिस प्रकार तुम्हारी सूचिका ने निर्दयता-पूर्वक मुमनों के हृदय बेधकर उन्हें एक माला में गूँथ दिया है, उसी तरह हूणों के अमानुषिक अत्याचारों की पैनी नोंक जनता के हृदयों को एक सूत्र में पिरो देगी ।

सुहासिनी—और एक साथ संपूर्ण भारत का मनोबल शत्रु के आतंक को चुनौती देगा और उसका नेतृत्व करेंगे मालववीर विष्णुवर्धन और तब सुहासिनी विजयश्री प्राप्त करने वाले यशस्वी जन-नायक को जयमाला पहनाएगी ।

[सुहासिनी विष्णुवर्धन के गले में माला पहना देती है ।]

विष्णु—यह क्या किया तुमने ?

सुहासिनी—तुमने पाणि-ग्रहण किया और मैंने वरगाला पहनाई ।

विष्णु—किन्तु प्राण-प्रिय अतिथि ! इस समय हमारा देश एक विशाल श्मशान बना हुआ है । क्या हमें श्मशान पर शहनाई बजाने का अधिकार है ?

सुहासिनी—तो तुम वरमाला को तोड़कर पृथ्वी की पंखुड़ी-पंखुड़ी कुचल डालो । हृदय ने अपना धर्म पाला है, मस्तिष्क अपना कर्म कर सकता है ।

विष्णु—सुहासिनी, क्या तुम नहीं जानती कि सैनिक जीवन आंधी में जलने वाला दीपक है, वायु का कोई झोंका उसे बुझा दे सकता है । नश्वरता के उत्तरीय से तुम अपने भाग्य के आंचल का ग्रंथि-बंधन मत करो । तुमको तो ज्ञात है कि मैंने महासती पूजनीया माताजी की प्रज्वलित चिता को नमस्कार करके भारत से हूणों की निरंकुश और नृशंस सत्ता को सदा के लिए सर्वथा समाप्त करने की शपथ ग्रहण की है । मेरे बाहुओं पर ऐसा मधुर बोझ मत डालो कि रणभूमि में इनकी गति मन्द पड़ जाए । मेरे पांवों में स्नेह की जंजीर मत कसो—मुझे मुक्त रहने दो—पवन के समान गतिवान रहने दो ।

सुहासिनी—तो लाओ, अपने हाथ से यह वरमाला मेरे गले में डाल दो ।

[विष्णुवर्धन अपने गले से माला उतार कर
सुहासिनी को पहनाता है ।]

सुहासिनी—बंधन तुम्हारे लिए नहीं केवल मेरे लिए है । तुम मुक्त हो—अपनी इच्छा के स्वामी हो । मैं तुम्हारी गति बनकर तुम्हारे प्रत्येक कार्य में साथ रहूँगी । मुझे विश्वास है कि जो कार्य मालव गणाधिपति शकारि विक्रमादित्य पूर्ण रूप से सम्पन्न न कर सके, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य भी आजीवन अनवरत संग्राम-रत रह कर कठिनाई से पूर्ण कर सके, गुप्त-साम्राज्य की विशालवाहिनी की अगला बना परम भट्टारक पराक्रमांक स्कंदगुप्त विक्रमादित्य भी साध न सके—वही भारतभूमि को विदेशियों से मुक्त करने का कार्य तुम सहज ही कर सकोगे ।

विष्णु—इस विश्वास के लिए कारण ?

सुहासिनी—कारण कि तुम सम्राट नहीं हृदय-सम्राट हो । जन-नायक के साथ ही मन-नायक भी हो । जनमत तुम्हारे साथ है । तलवार को तलवार काट सकती है किन्तु जन-मत के प्रवाह को न कोई काट सकता है, न कोई रोक सकता है । कोटि-कोटि तोरमाण और मिहिरकुल जनमत के महासमुद्र में विलीन हो जाएँगे, समझे हृदय-सम्राट !

[वत्स का प्रवेश]

वत्स—क्षमा करना, हृदय-सम्राट ! बिना आज्ञा पाये ही तुम्हारे राज्य में प्रवेश करने का दुस्साहस मैंने किया है ।

सुहासिनी—पराए राज्य की सीमा में प्रवेश करना दुस्साहस नहीं है, हाँ किसी के राज्य पर अधिकार कर स्वयं राजा बनने का दुस्स्वप्न देखना अपराध अवश्य है ।

वत्स—राजा बनने का दुस्स्वप्न तो इस कवि ने अपने प्राणों में कभी नहीं पाला । मैं तो अपने राजा के सुविस्तृत साम्राज्य के किसी एक कोने में अपनी अकिंचनता की चटाई बिछाकर बैठ जाना चाहता हूँ—और अपनी हृदय-वीणा के तार भङ्ग कराना चाहता हूँ ।

विष्णु—किन्तु राजा कवि को राजमन्त्री बनाना चाहे तो ।

वत्स—मेरे राजा की आज्ञा तो मुझे माननी ही पड़ेगी ।

सुहासिनी—तो आज से विष्णुवर्धन हुए चन्द्रगुप्त और महाकवि वत्स चाणक्य ।

विष्णु—हासिनी, मनुष्य को मनोरथ के अश्वों की रास अपने हाथ में रखनी चाहिए, और अपने लक्ष्य का भी ज्ञान होना चाहिए ।

सुहासिनी—अवश्य ही, लेकिन मनुष्य को मनोरथ के अश्वों के पाँवों में साँकल भी नहीं बाँधनी चाहिए । चन्द्रगुप्त मौर्य साधारण सैनिक ही तो था किन्तु उसके प्राणों में आकांक्षा की आग जल रही थी, उसे चाणक्य रूपी पवन का सहयोग मिला तो नृशंस नन्द-साम्राज्य सूखे हुए खेत की तरह जलकर भस्म हो गया । क्या आज उसी की

पुनरावृत्ति नहीं होगी ।

वत्स—अवश्य होगी, यही आज कोटि-कोटि प्रपीड़ित प्राणों की पुकार है किंतु चन्द्रगुप्त और नंद का युद्ध दो भारतीयों का गृहयुद्ध था । इसके विपरीत आज हमें उस बर्बर विदेशी सत्ता से संग्राम करना है जिससे संसार की कोई शक्ति भिड़ने का साहस नहीं कर सकती है । सबसे अधिक दुर्भाग्य की बात यह है कि धन्यविष्णु जैसे स्वार्थ-साधक, नीच और कापुरुष निजी जीवन के सुख-विलास-वैभव की रक्षा के हेतु विदेशी सत्ता के रक्षा-कवच बने हुए हैं । हमें परायों से पहले अपनों से लड़ना है ।

विष्णुवर्धन—किन्तु हमारा मुक्ति-संग्राम भूपालों के सहयोग पर अवलंबित नहीं होगा । निस्सन्देह, सुहासिनी, भूपालों की वेतन-भोगी सेना हूणों की दुर्धर बर्बरता की आँधी के सामने नहीं टिक सकेगी । इसका प्रमाण एरण के युद्ध में मिल चुका है । आवश्यकता है जनता में निर्भयता, आत्मविश्वास, समूह बल पर आस्था और देश के प्रति कर्तव्य-भावना को जाग्रत कर प्रत्येक आबाल-वृद्ध नर-नारी को मुक्ति-सेना का सैनिक बनाने की ।

[मंदाकिनी का प्रवेश]

मंदाकिनी—और आवश्यकता है इस बात की कि मुक्ति का संग्राम लड़ने वाले खाना-पीना छोड़कर केवल मंत्रणा में निरत न रहें ।

विष्णु—सम्पूर्ण भारत की भूख-प्यास की तृप्ति के साधनों की सिद्धि जिनके जीवन का स्वप्न है वे अपनी भूख-प्यास की चिन्ता कैसे कर सकते हैं ?

वत्स—नहीं, मंदाकिनी, यथार्थ बात यह है कि सुहासिनी के मधुर हास्य ने विष्णुवर्धन की भूख-प्यास को सदा के लिए तृप्त कर दिया है ।

मंदाकिनी—जानती हूँ वत्स, किन्तु मुसकान और चितवन के पेय से कोई हृदय की भूख-प्यास भले ही बुझाले, किन्तु शरीर को तो

गोमाता के थनों का वरदान फेनोज्वल दुग्ध या भू-माता का वरदान अन्न चाहिए। सैनिक को अपने शरीर की भी तो चिन्ता करनी पड़ती है। (विष्णुवर्धन से) चलो, भैया, सुहासिनी तो ऐसी मैना है जिसे तुम मुक्त भी कर दोगे तब भी वह पुनः लौटकर पिंजरे में आ बैठेगी।

विष्णु—बहन, तुम अतिथि के प्रति अन्याय करनी हो।

मंदाकिनी—हाँ, किंतु इतना नहीं जितना तोरमाण और मिहिरकुल भारत के प्रति कर रहे हैं।

सुहासिनी—अन्याय करने वाले के प्रति विद्रोह होने की भी तो संभावना है।

मंदाकिनी—मैं यदि निर्दयता भी करूँ तब भी तुम मुझसे विद्रोह नहीं कर पाओगी, सुहासिनी, क्योंकि मैं हूँ अतंककारियों की भाँति विदेश से नहीं आई हूँ। मेरी ममता की निर्ममता तो तुम्हें सहनी ही पड़ेगी। कहो न अपने सम्राट और उनके महामंत्री से कि अब राजसभा भंग कर मेरी भोजनशाला में पदार्पण करें। ये तुम्हारा संकेत पाए बिना एक पग भी नहीं उठायेंगे।

सुहासिनी—क्या भारत-भाग्य-निर्माण का स्वप्न देखने वाले के पग एक शरणार्थिनी के संकेतों पर उठेंगे।

मंदाकिनी—इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? शरणार्थी किसी दिन सम्राट बन बैठता है। शुभ नक्षत्रों का उदय किसी को भी प्रभुता और प्रभाव के उच्चतम शिखर पर आसीन कर सकता है। मेरी तो यही कामना है कि ऐसा शुभ मुहूर्त सत्वर आए कि भैया के निरंकुश हृदय को कोई मधुर व्यक्तित्व नियन्त्रित करे, किसीका अनुशासन दुस्साहसी मन को विवेक की आँखें दे, और पराक्रम को विचार करने की भी बुद्धि दे। मैं जानती हूँ हमारे देश का पीड़ित हृदय भैया में वीर, पराक्रमी, विवेकशील, दृढ़व्रती और आत्म-विश्वासी जन-नेता को देखता है, किंतु मैं समझती हूँ कि अपना

जीवन सेवा की बलिवेदी पर अर्पित करने वाले की सांसों भी किसी के स्नेह का सहारा खोजती है जिससे उसे विपरीत परिस्थितियों के आघात सहने का बल प्राप्त हो, असफलताओं के पश्चात्त रण-निरत रहने की स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त हो ।

वत्स—किन्तु मंदाकिनी, मनुष्य-काया को जो स्फूर्ति स्वादिष्ट भोजन से प्राप्त होती है वह किसी अन्य वस्तु से नहीं ।

विष्णु—जान पड़ता है वत्स के कवि पर इसका ब्राह्मणत्व प्रबल हो गया है । भखे ब्राह्मण के पेट की ज्वाला शांत करनी ही पड़ेगी । चलो ।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

[स्थान—कंचनी का शयन-कक्ष । समय—रात्रि । कक्ष की सजावट बहुमूल्यता के साथ सुरुचि तथा सौंदर्य-प्रियता की द्योतक है । दीवार पर ताण्डव की मुद्रा में नटराज शंकर और वीणावादन-रत सरस्वती के चित्र कलाकार की कुशल तूलिका का विज्ञापन कर रहे हैं । कक्ष में बिछे पर्यंक के चारों पाए हाथीदांत से गढ़ी हुई चार अप्सराओं की मूर्तियों के हैं । शय्या पर जरीदार किनारी वाली दुग्ध-धवल चादर बिछी हुई है । मखमल के सिरहानों पर भी बहुमूल्य जरी का काम किया हुआ है । पर्यंक के पार्श्व में हाथी दांत की तिपाही पर स्वर्ण-निर्मित सुराही रखी हुई है, पास ही मद-पान करने के मनोरम पात्र रखे हैं । पर्यंक से आधारित एक वीणा रखी है । कंचनी एक दर्पण के सम्मुख खड़ी होकर अपने अवयवों के सौंदर्य और गठन को निहार रही है ।]

कंचनी—कला के रसिक कलाकार की कला के पहिले उसके रूप और यौवन को देखते हैं। और यदि कलाकार अपनी कला से उसे प्रभावित कर सका तो वह उसके रूप-यौवन का रसपान करने के लिये पागल हो उठता है। मैं समझती हूँ कि मैं कला के प्रदर्शन से रसिकों के हृदयों में आनन्द की हिलोरें उठाती हूँ—किन्तु वास्तविकता यह है कि अधिकांश रसिक कला में कम और शरीर के सौष्ठव में ही मन को अधिक उलझा देते हैं, तब मुझे क्रोध आता है अपने ही सौंदर्य पर।

[कंचनी की परिचारिका मालती इन्द्रच्छद माणवक हार लेकर प्रवेश करती है।]

मालती—यह इन्द्रच्छद माणवक हार भी धारण कर लो। (हार कंचनी को पहनाकर) आकाश के नक्षत्र भी इस हार से ईर्ष्या करते हैं कि इसे तो तुम्हारे गले का हार बनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया और वे आकाश में तरसते ही रहते हैं। तभी तो वे रात-भर आंसू बहाकर तुहिन-कणों से पृथ्वी का आंचल भर देते हैं। विधाता ने तुम्हें गढ़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी है—तिस पर आभूषण तो तुम्हारे रूप को चार चाँद लगा देते हैं।

कंचनी—किन्तु मालती, मेरी आत्मा मुझसे प्रश्न करती है कि कलाकार कला-रसिकों के संमुख सज-सजाकर इतने आकर्षक रूप में क्यों उपस्थित हो ? क्यों न वह यवनिका के पीछे बैठकर वीणा की झंकार से श्रोताओं के हृदय में आनन्द की तरंग उठाए ?

मालती—कलाकार के आँखों से ओझल रहने पर भी, दूरागत वीणा की तान से तरंगित होने वाले कला-प्रेमी संसार में हैं कहां ? देवताओं के राजा इन्द्र भी कला को वासना को उत्तेजित करने वाली मदिरा बनाने में नहीं लजाए, तो मानवों को नारद मुनि बनाने की कल्पना हमें क्यों करनी चाहिये ? विधाता ने तुम्हें कला

भी प्रदान की है और कञ्चन-काया भी तब क्यों दोनों गुणों के जादू से मानव-मन को नचाने में संकोच करती हो ? भूपालों के राजमुकुट भी तुम्हारी चरण-धूलि की कामना करते हैं, विश्व का वैभव तुम्हारे चरणों पर निछावर होने को तरस रहा है ।

कंचनी—किन्तु क्या वैभव का ढेर आत्मा की प्यास बुझा सकता है ?

मालती—शरीर को सुखाकर आत्मा की प्यास बुझाने के प्रयास को मैं तो पागलपन समझती हूँ, देवि । वैराग्य की बातें तपोवन के महर्षियों को करने दो—नर्तकी के प्रमोद-भवन में वैराग्य की रागिनी कोई नहीं सुनना चाहता । कला-भवन में रसिकों का समुदाय एकत्रित हो गया है । तुम्हारे चिर-परिचित धनी-मानी भद्रजनों के अतिरिक्त अनेक हूण सेनाध्यक्ष और उच्च राज्याधिकारी भी उपस्थित हैं । उनके श्रवण, नयन और मन की तृष्णा बुझाओ ।

कंचनी—मालती ! आज मेरा मन न जाने किस अज्ञात लोक में उड़ रहा है । आज वासना के कीच में सने हुए कीटों का मनोरंजन मैं नहीं करूंगी । तुम अभ्यागतों से निवेदन कर दो कि मैं स्वस्थ नहीं हूँ ।

मालती—उज्जयिनी के भद्रजन तो तुम्हारी उपेक्षा के बाण अनेक बार खा चुके हैं, प्रत्येक ठोकर उन्हें नवीन उत्साह देती है और वे फिर-फिर लौटकर तुम्हारे चरणों में गिरते हैं, किन्तु ये विदेशी बर्बर हूण क्या अपमान का बाण सहकर चैन से बैठेंगे ?

कंचनी—जानती हूँ वे चैन से नहीं बैठेंगे और चैन से तो मैं भी नहीं बैठूंगी—और सच पूछो तो मालती, एरण के रणक्षेत्र में मैंने जो कुछ देखा है उसने मेरे हृदय में हलचल पैदा कर दी है । मिहिर-कुल के ज्वलित ज्वालागिरि समान व्यक्तित्व से मेरी कला पराजित होकर आई है । मुझे उस रात के अपूर्ण नृत्य को पूर्ण करना है । घुंघरूओं के मधुर स्वर की अपेक्षा पीड़ित प्राणों के चीत्कार से अधिक प्रफुल्लित होने वाले हृदय की चुनौती

मुझे विकल किये हुए है। मैं उस पर्वत को पीसकर बालुकणों में परिवर्तित करना चाहती हूँ।

[इसी समय कहीं निकट से वीणा-वादन की ध्वनि सुनाई देती है।]

कंचनी—किसी कलाकार की कुशल अँगुलिया कञ्चनी को चुनौती दे रही हैं।

मालती—निश्चय ही कलाकार का स्वरों पर अद्भुत अधिकार जान पड़ता है, कितनी सुन्दरता से तार सप्तक के स्वरों से अँगुलियाँ नतन करती हुई मन्द्र सप्तक के स्वरों तक आ रही हैं।

कंचनी—इस स्वर-गंगा को अवतरित करने वाले भगीरथ को यहाँ ले आओ।

मालती—जो आज्ञा।

[मालती जाने लगती है।]

कंचनी—मयूरी के साथ घुँघरू भेज देना।

मालती—अच्छा देवि।

[मालती का प्रस्थान]

कंचनी—एक-एक स्वर प्राणों के आंगन में अनिवर्चनीय आनन्द बरसा रहा है। यह है कला का वास्तविक स्वरूप—रूपहीन, आकारहीन। वायु का पथ प्रस्तर की भित्तियाँ अवरुद्ध कर बैठी हैं किन्तु स्वरों का भङ्गावात प्रत्येक बाधा को बेध देता है। ऐसा कौनसा स्थान है जहाँ स्वर का पंखी उड़कर नहीं पहुँच सकता। स्वर के सूत्र एक हृदय को दूसरे हृदय से संयुक्त कर सकते हैं। स्वर की मदिरा श्रवण-मार्ग से प्राणों में उतरकर रक्त में मिल जाती है जिसका नशा युग-युग तक मन को पागल रखता है।

[मयूरी का घुँघरू लिए प्रवेश।]

मयूरी—आज्ञानुसार घुँघरू ले आई हूँ किन्तु.....

कंचनी—(बात काटकर) पूछना चाहती है कि कला-भवन की सभा

को विसर्जित कर सूने शयनागार में किस अदृश्य प्रतिधि का अपने नृत्य से सत्कार करना चाहती हूँ ? किसको रिझाना चाहती हूँ ?

मयूरी—रवि-शशि की आभा जिसकी मनुहार करती है उसे किसी को रिझाने की आवश्यकता ही क्या है ?

कंचनी—किसी को रिझाने की आवश्यकता नहीं है । तो क्यों नित्य ही पाँवों में घुँघरू बाँध कर मैं इतने पुरुषों के सामने नृत्य करती हूँ । क्यों उनके हृदय के सुषुप्त वासना-विषधर को जाग्रत करती हूँ ? जिस सर्प से मैं रात-दिन क्रीड़ा करती हूँ क्या वह किसी दिन मुझे नहीं डस लेगा ? क्या वह कला के प्राणों को ही विषाक्त नहीं कर देगा ?

[मयूरी से घुँघरू लेकर अपने पैरों में बाँधती है ।]

मयूरी—मे बांध दूँ ?

कंचनी—नहीं आज नहीं, आज मे स्वयं बाँधूंगी ।

[कंचनी घुँघरू बाँधकर नाचने लगती है]

मयूरी—जिन अभ्यागतोंको आपने चले जाने का आदेश दिया है घुँघरूओं की ध्वनि उनके पैरों की जंजीर बन जाएगी और तब उन बन्दियों पर दया कर आपको एकान्त छोड़कर कला-भवन में जाना ही पड़ेगा ।

[कंचनी मयूरी की बात सनकर नाचना बन्द कर देती है]

कंचनी—सच कहती हो, मयूरी ! मेरे प्राणों के ज्वार को नृत्य के तोड़ों में तरंगित होने से मुझे रोकना ही पड़ेगा । अनचाहे अभ्यागतों को कला-भवन से बिदा करने के लिए मौन में हृदय के संगीत को विसर्जित कर देना होगा । मेरे जीवन के चारों तरफ शून्यता छा जाए, अभावस्था की काली रात में काली घटाएँ घिर

कर तारों की आँखें भी मूंद लें—तब एक बिजली सी चमके और जलते हुए बाण की तरह मेरे प्राणों में समा जाए ।

मयूरी—देवि, जान पड़ता आज कुछ अधिक...

कंचनी—(बात काटकर) कुछ अधिक पी ली है—लेकिन कहाँ आज तो मैंने मदिरा को छुआ भी नहीं है । हाँ, संगीत-सुरा का एक घूँट अवश्य पिया है । जिस तान को सुनने के लिए मैं युग-युग से तरस रही थी आज किसी ने उसके दो बोल सुना दिए हैं । अब कंचनी में भट्टी में बनी हुए द्राक्ष-सुरा पीने की सुधि नहीं है । ऐसा जान पड़ता है कोई मुझे बादलों के रथ पर चढ़ाकर लिए जा रहा है—तुम लोगों के देखते-देखते मेरा अपहरण कर रहा है ।

[मालती के साथ ब्रह्मचारी के वेश में वत्स का प्रवेश । कंचनी मयूरी और मालती को जाने का संकेत करती है ।]

कंचनी—युवक, तुमने मेरे एकान्त अन्तःपुर में बरबस प्रवेश किया है ।

वत्स—नर्तकी, तुमने ही तो मुझे बुलाया है और मुझ पर बरबस घुस आने का आरोप भी लगा रही हो ।

कंचनी—मेरा आरोप मिथ्या नहीं है युवक ! तुम यहाँ आने के पहले ही आ चुके हो। और जब तुम आए तब मेरा आमन्त्रण तुम्हें नहीं पहुँचा था ।

वत्स—यदि मैं आने के पहले ही आ गया हूँ तो कदाचित् आकर भी मैं नहीं आया हूँ—और मैंने आमन्त्रण पाकर भी नहीं पाया है, तुमने मुझ पर आरोप लगाकर भी नहीं लगाया है और मैं तुम्हारे सामने होकर भी नहीं हूँ और अब मुझे यहाँ की प्रत्येक वस्तु को टटोलकर देखना पड़ेगा कि जो कुछ मैं देख रहा हूँ वह है या नहीं ?

कंचनी—तब सबसे पहिले मुझे ही टटोलकर देखो युवक ! मेरे हाड़-मांस-चर्म और रक्त को किसी ने चन्द्र समझा, किसी ने कमल

और किसी ने गुलाब, किन्तु वात्सव में मैं क्या हूँ यह तुम्हीं बता सकोगे ।

वत्स—नारी का अध्ययन करने का अवसर ब्रह्मचारी ने पाया ही कहाँ है जो बता सकूँ कि तुम क्या हो ।

कंचनी—तो पुस्तक की भाँति नारी तुम्हारे सामने रखी हुई है, उसका प्रत्येक पन्ना खोल खोलकर तुम पढ़ सकते हो ।

वत्स—नारी-हृदय के अक्षर पढ़ने की विद्या सिखाने वाला गुरु मुझे नहीं मिला है ।

कंचनी—और वीणा पर मन को मथ डालने वाला राग छेड़ना तुम्हें किस गुरु ने सिखाया है ?

वत्स—राजा भर्तृहरि ने !

कंचनी—उन्हें तो हुए लगभग ६०० वर्ष हो गये हैं ।

वत्स—उनकी जन्म-तिथि को ६०० वर्ष हुए होंगे—किन्तु उनकी मरण-तिथि कदाचित् ६०० कल्प के पश्चात् भी न आये ।

कंचनी—लोग कहते हैं उन्होंने अमृत-फल खाया था ।

वत्स—साहित्य और कला ही अमृत-फल है । साहित्य-सृष्टा और कलाकार मरता नहीं है । काल भी उसे मार नहीं सकता ।

कंचनी—मुझे अपने गुरु की शिष्या बना दो न !

वत्स—राजर्षि नारी से डरते हैं ।

कंचनी—डरते हैं या घृणा करते हैं ?

वत्स—घृणा चाहे न करें, लेकिन अविश्वास अवश्य करते हैं ।

कंचनी—तो उनका शिष्य पाप-मूल नर्तकी के अंतःपुर में कैसे आ सका है ?

वत्स—यौवन अन्धा और दुस्साहसी होता है ।

कंचनी—दुस्साहसी होता है तो बैठ जाओ उस पर्यंक पर जो कहने को वेश्या का है, लेकिन राजर्षि भर्तृहरि की रानी के पर्यंक से अधिक पवित्र है ।

वत्स—ब्रह्मचारी के पास कंचन नहीं है ।

कंचनी—यौवन का निरावरण और निराभरण नग्न सौंदर्य कंचन से अधिक चमकदार है ।

वत्स—किन्तु नारी-शरीर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित है ।

कंचनी—(शरीर के गहने उतार कर फेंकते हुए) तुम चाहते हो तो मैं शरीर के ऊपर लदा भार उतार दूंगी ।

वत्स—और शरीर को भी ?

कंचनी—हाँ, शरीर को भी ।

वत्स—तो ब्रह्मचारी वेश्या के पर्यक पर बैठेगा ।

[वत्स पर्यक पर बैठता है]

कंचनी—(सारे आभूषण उतारने के बाद) अब वस्त्र भी फेंक दूँ ?

वत्स—चन्द्र पर भीने बादल रहने दो ।

[कंचनी वत्स के पास ही आ बैठती है—लेकिन

वत्स उठकर खड़ा हो जाता है ।]

कंचनी—खूब, दूर बैठकर मुझे रिझाने के लिये वीणा बजा रहे थे और...

वत्स—(बात काटकर) मैं तो स्वांतःसुखाय वीणा के तार छेड़ रहा था ।

कंचनी—स्वांतःसुखाय ही वीणा बजानी थी तो वन-खंड में जाते ।

कंचनी के भवन के पास जो मादक स्वरों को छेड़ता है वह तो निश्चय ही कंचनी के मन को जीतने का प्रयास करता है । सभी कंचनी का मन जीतना चाहते हैं—धनी धन से, भूपति प्रभुता से, और कलाकार कला से ।

वत्स—किन्तु कंचनी अजेय है ।

कंचनी—कंचनी अजेय होती तो क्या एक अपरिचित ब्रह्मचारी को अपने कक्ष में बुलाती ?

[कंचनी वत्स का हाथ पकड़कर उसे फिर

पर्यंक पर बैठा देती है ।]

कञ्चनी—भागो मत ! मेरा शरीर अग्नि-पिण्ड नहीं है और न तुम्हारा शरीर रूई का ढेर है । नारी-शरीर से डरते हो तो लो में स्वयं उठ जाती हूँ, किन्तु तुम मेरे पाहुने हो । जो मदिरा भूपालों को भी दुर्लभ है उससे तुम्हारा सत्कार करूंगी ।

[कञ्चनी सुराही से मद-ठालकर वत्स को देती है लेकिन वह नहीं लेता ।]

वत्स—मदिरा सुन्दरी से अधिक मादक नहीं है ।

कञ्चनी—कविता छोड़ो ! किसी आर्य को मदिरा अरुचिकर नहीं हो सकती है ।

वत्स—मद-पान को मैं पाप नहीं मानता, सुन्दरी, लेकिन चाणक्य मुझे रोकता है ।

कञ्चनी—तो तुम चाणक्य के भी शिष्य हो ?

वत्स—हां, राजनीति में । चाणक्य का आदेश है कि शत्रु की नगरी में बिना बलिवैश्वदेव कोई भोज्य या पेय पदार्थ का उपभोग नहीं करना चाहिये ।

कञ्चनी—राजनीति के नियम प्रीत-मंदिर में नहीं चलते ।

वत्स—ब्रह्मचारी गुरु की आज्ञा मानना अपना कर्तव्य समझता है । तुम मुझे मदिरा पिलाना चाहती हो तो अपनी बिल्ली को बुलाओ—पहिले वह पियेगी ।

कञ्चनी—तो मैं तुम्हारी बिल्ली बन जाती हूँ । लो पहिले मैं पीती हूँ ।

(मद पीते हुए) यदि इसमें यथार्थ में विष हुआ तो ?

वत्स—तो तुम्हारे अधरों के स्पर्श से अमृत हो जाएगा !

कञ्चनी—कारण ?

वत्स—अधरों में अमृत है !

कञ्चनी—अमृत पियोगे ?

वत्स—पिलाओगी ?

[कञ्चनी अपना जूठा पात्र ही वस्स को देती है । और वस्स उसी से मद-पान करता है ।]

कञ्चनी—कितना अच्छा होता कि सचमुच हाला में हलाहल होता—पीते ही मेरे आँठ जल उठते—मेरी जूठी तुम पीते और तुम्हारे आँठ जल उठते—तुम्हारी जूठी मैं पीती और मेरे प्राण जल उठते । मैं उन्मत्त होती—तुम भी उन्मत्त होते । तुम वीणा पर तूफानी तान छेड़ते और मैं उन्मत्त होकर नाचती ।

वस्स—तो तुम नाचो ।

कञ्चनी—क्यों ?

वस्स—क्योंकि तुम उन्मत्त हो ।

कञ्चनी—तुम वीणा बजाओ ।

वस्स—क्यों ?

कञ्चनी—क्योंकि तुम उन्मत्त हो ।

वस्स—अच्छी बात है तो मैं वीणा बजाता हूँ—तुम नाचो ।

[वस्स वीणा बजाता है और कञ्चनी नाचती है । दोनों ही अपने तन-मन की सुधि भूलकर अपनी कला की पराकाष्ठा प्रदर्शित करना चाहते हैं । मालती की बाहर से ही आवाज आती है ।]

मालती—देवि, महाराज धन्यविष्णु आकर कला-भवन में बैठें हैं ।

[कञ्चनी और वस्स मालती की बात पर ध्यान नहीं देते—लेकिन वह फिर पुकारती है ।]

मालती—महाराज धन्यविष्णु आपसे इसी समय मिलना चाहते हैं ।

[कञ्चनी का नृत्य रुकता है । वस्स भी वीणा बजाना बन्द कर देता है ।]

कञ्चनी—महाराज धन्यविष्णु का मुझे स्वागत करना ही पड़ेगा । वह राजा हैं—और कला के प्रदर्शन का व्यापार राजाज्ञा के बिना

किया नहीं जा सकता । राजा की अवहेलना का अर्थ तुम समझ सकते हो । तुम उस कक्ष में विश्राम करो—मुझे डर है वह कहीं यहीं न चला आये । आओ मैं तुम्हारे विश्राम का प्रबन्ध कर दूँ तब राजा की सुधि लूँगी ।

[दोनों का प्रस्थान ।]

[पट-परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

[स्थान—वन-पार्वत्य प्रदेश में एक गुहा-द्वार । समय—संध्या । विष्णुवर्धन, अभयदत्त, धर्मदास, जयदेव, मंदाकिनी, सुहासिनी और उमा का वार्तालाप करते हुए प्रवेश । सभी स्त्री-पुरुष सैनिक वेश में हैं ।]

विष्णुवर्धन—पिताजी ने गुप्त-साम्राज्य के स्वामिभक्त सैनिक के रूप में कर्तव्य-पालन करते हुए एरण के रणक्षेत्र में प्राण न्योछावर कर दिए और माता जी ने आर्य नारी के आदर्शानुसार स्वर्ग में उनका अनुगमन किया । आप स्वीकार करेंगे कि जिन बर्बर हूणों की निर्दयता ने मेरे हृदय पर ये अमर आघात किये हैं, उनके प्रति मेरे प्राणों में प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की भावनाओं का उन्मत्त हो उठना नितान्त स्वाभाविक है ।

जयदेव—हाँ, सर्वथा स्वाभाविक है, और मैंने भी एरण नगरी में हूणों द्वारा धधकाई हुई भयंकर ज्वाला में अपने घरबार को भस्म होते हुए देखा है । ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे तन-मन-प्राण लपलपाती हुई लपटों से आवेष्टित हैं । यह ज्वाला तभी शांत हो सकेगी जब इन नर-राक्षसों के रक्त से मैं भारतभूमि को स्नान कराऊंगा ।

धर्मदास—तुम्हारी भाँति ही हूणों के अत्याचार की आँच में भारत के अनेक प्राण आज जल रहे हैं। विष्णुवर्धन और जयदेव के घर की कहानी आज भारत के घर-घर की कहानी है। लाखों हृदय हूणों को अभिशाप देते हुये प्रतिशोध लेने के लिए व्याकुल हैं।

अभयदत्त—और एक हृदय की व्याकुलता उसके अनेक आत्मीय स्वजनों को भी आकुल कर रही है, जैसे कि मैं विष्णुवर्धन की वेदना से व्यथित हूँ। विष्णुवर्धन के और मेरे तन में एक ही रक्त प्रवाहित है। विष्णुवर्धन के प्राणों की लपटें मेरे प्राणों में भी ज्वाला प्रज्वलित करती हैं।

विष्णुवर्धन—इस सहानुभूति के लिए मैं आपका आभार मानता हूँ, अभयदत्त जी, किन्तु मैं चाहता हूँ कि हमारी सम्बेदना और सहानुभूति व्यापक रूप धारण करे। राज्य, प्रदेश, जाति और वंशों के प्राचीरों को चीर कर हमारे व्यवितत्व मुक्त आकाश में पंख फैलाएँ, देश के प्रत्येक प्राणी को अपनी आत्मा का अंश मानें।

मंदाकिनी—निश्चय ही हमे व्यक्तिगत मानापमान और हानि-लाभ को भूल, सम्पूर्ण राष्ट्र के हिताहित को ध्यान में रख कर एक राष्ट्र-पताका की छत्र-छाया में खड़े होकर एकता का गीत गाना होगा। कैलास की ऊँचाई पर गूँजने वाली रागिनी भारतीय महासागर की लहरों में भी सुनाई पड़नी चाहिए।

सुहासिनी—अर्थात् भारत के प्रत्येक हृदय की धड़कनों का राग एक होना चाहिए। सम्पूर्ण जन-समुदाय के पग एक ही ताल पर उठने चाहिए।

जयदेव—एक ही ताल पर उठने चाहिए, किन्तु क्या यह साध्य है ?

धर्मदास—आदर्श सदा ही दुस्साध्य होता है। सम्पूर्ण वसुधा को कुटुम्ब समझने की शिक्षा देने वाला आर्य-दृष्टिकोण यदि व्यापक रूप में हमारे व्यावहारिक जीवन में समाविष्ट हो पाता-तो क्या आज हम विभाजित और दुर्बल होते ?

सुहासिनी—कैसे आश्चर्य की बात है कि विस्तार, जनसंख्या, विभव, सुख-साधन एवं ज्ञान-विज्ञान में संसारके सभी महान देशों से हमारा देश महत्तम है फिर भी यूनानी, शक और हूण आदि विदेशी जातियाँ इस पर आक्रमण करने का दुस्साहस कर सकीं ।

विष्णुवर्धन—किन्तु सुहासिनी, विश्व-नियंता की सृष्टि में कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है । अभिशाप और वरदान के बीज मानव स्वयं अपने हाथ से बोता है । भारत को प्रकृति से जो वरदान प्राप्त हुए हैं वे हमारे पूर्वजों के पुरुषार्थ की उपज हैं, और जो अभिशाप प्राप्त है वे भी हमारी ही त्रुटियों के परिणाम हैं ।

मंदाकिनी—निश्चय ही, यदि भारतीयों ने व्यक्ति के विकास को अत्यधिक महत्व न देकर सामूहिक विकास और सम्पन्नता में ही व्यक्ति का हित समझा होता तो क्या कोई विदेशी जाति आक्रमणकारी के रूप में भारत के सीमांत प्रदेश के आगे एक पग भी रख सकती थी ? क्यों न सम्पूर्ण भारत की शक्ति सुदृढ़ प्राचीर की भाँति सीमान्त पर खड़ी हो जाती, और उसके दुस्साहस को विफल कर देती ।

अभयदत्त—किन्तु आर्य सदा ही विभाजित और संकुचित सीमाओं में बँधे हुए नहीं रहे । इतिहास साक्षी है कि सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य, प्रियदर्शी अशोक, परम भागवत समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और परम भट्टारक स्कन्दगुप्त पराक्रमांक आदि सम्राटों ने राष्ट्रीय एकता के महत्व को समझा था; तभी तो उन्होंने सम्पूर्ण भारत में एक चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना को आवश्यक माना था । जब-जब भारत एकता के सूत्र में ग्रथित हुआ, तब-तब इसके तेज की चकाचौंध से विश्व की आँखें चौंधिया गईं । तब उसकी ओर देखने का साहस किसी को नहीं हुआ और यदि भूल से किसी ने भारत पर आक्रमण करने का दुस्साहस किया भी तो मुंह की खानी पड़ी ।

विष्णुवर्धन—किन्तु सम्राटों द्वारा स्थापित एकता शक्ति को नमस्कार करने वाली विवशता थी—स्वतः स्फूर्त आत्मीयता का, एकरसता का उसमें अभाव था। क्या कारण था कि परम भट्टारक स्कन्द-गुप्त पराक्रमांक के पश्चात् एक भी गुप्त सम्राट राज्य-लक्ष्मी को स्थिर न रख सका। ऐश्वर्य की तरंगों पर विलास की तरणी में विहार करने वाले सम्राटों के हाथों में खड्ग की मूठ पकड़ने की क्षमता न रही।

अभयदत्त—और अब ऐसा जान पड़ता है कि हूण आक्रमणों का अनवरत स्रोत गुप्त साम्राज्य की जड़ों में प्रविष्ट हो गया है। उसके जोड़-जोड़ हिल उठे हैं। ऐसा जान पड़ता है कि परम भागवत समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा निर्मित विशाल अट्टालिका गिरकर अपनी ही विशालता में विलीन हो जाएगी।

धर्मदास—अब इसमें सन्देह भी क्या है ? धन्यविष्णु के देशद्रोह ने मालव प्रदेश को हूणों के अधिकार में सौंप दिया है। आर्जुनायन, योधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खरपरिक आदि सभी गण-राज्य गुप्त साम्राज्य के जुए को फेंक कर स्वतन्त्र हो गए हैं।

मंदाकिनी—गणराज्य स्वतन्त्र हो गए हैं—यह तो अच्छा ही है।

विष्णुवर्धन—गण-राज्यों का स्वतन्त्र होना शुभ है—यदि वे अपने राष्ट्र भारत देश के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझकर एक दूसरे से प्रतिद्वन्द्विता न कर, राष्ट्र के विकास में एक दूसरे के सहायक बनें।

सुहासिनी—इसका तात्पर्य यह हुआ कि स्वतन्त्र गणराज्यों की अपेक्षा भारत का एक निरंकुश सम्राट की छत्र-छाया में रहना हितकर है।

विष्णुवर्धन—यदि सम्राट अपने आपको प्रजा का पिता अथवा सेवक समझे तो साम्राज्यवाद का बंधन भी देश को अनेक टुकड़ों में

विभाजित करने वाली स्वतन्त्रता से अच्छा है, किन्तु उस स्थिति को हम आदर्श नहीं कह सकते। हमें तो परम्परागत चलने वाली राजाओं की वंशावलियों को समाप्त करके, भारत को एक महान गणतन्त्र में संगठित करना होगा।

जयदेव—यह एक असंभव स्वप्न है। इससे तो अच्छा है कि आप भारत का सम्राट बनने का स्वप्न देखें और उसे सत्य करने में हम आपका साथ देंगे।

विष्णुवर्धन—नहीं जयदेव, विष्णुवर्धन मालव है और मालव गणराज्य के समर्थक हैं—समुदाय की, समाज की, देश के कोटि-कोटि मानवों की हित-साधना में व्यक्ति की महत्वाकांक्षाओं को संयत करने के सिद्धान्त को वह मानता है।

सुहासिनी—महत्वाकांक्षा की प्रेरणा मनुष्य को साहस, लगन और दृढ़ता प्रदान करती है, जिन गुणों के अभाव में मानव निर्जीव हो जाता है।

अभयदत्त—वंशानुगत सत्ता पीढ़ियों तक स्वत्व की रक्षा में पुरुषार्थ करती है। गणतन्त्र का नायक स्वयं चाहे कितना वीर हो—लेकिन उसके बाद उसके पुरुषार्थ से उद्भाजित सत्ता और प्रभुता अनाथ हो जाती है, जिस प्रकार विक्रमादित्य के पश्चात् मालव-भूमि हो गई थी। मालव प्रदेश गणतन्त्र न होकर एकतन्त्र साम्राज्य होता और विक्रमादित्य के वंशज उस साम्राज्य के उत्तराधिकारी होते तो मगध के स्थान पर मालव प्रदेश ही सारे भारत का स्वामी बनता।

विष्णुवर्धन—और मालवपति यदि भारत सम्राट बनते तो जिस भाँति दो चार उज्ज्वल नक्षत्र चमक कर तिरोहित हो गए उसी भाँति वे भी हो जाते। मैं तो मालव भूमि के लिए उस दिन को अभिशाप समझूँगा जब यहाँ के एक भी हृदय में सम्राट बनने की दुराशा जन्म लेगी। मालवों के हृदय में साम्राज्य की लालसा नहीं, स्वाधीनता की इच्छा होनी चाहिए—जो कि मैं समझता हूँ हम

में है—और यही इच्छा हमें सारे भारत में जाग्रत करनी है। तभी हम दूण जैसी निरंकुश, नृशंस और शक्तिशाली जातियों को भारतभूमि से निर्वासित कर सकेंगे।

मंदाकिनी—लेकिन, भैया, तुम्हारे इन विचारों से अवगत होकर क्या मगध, कलिंग, सौराष्ट्र और दक्षिणापथ के नृपति हमारे कार्य में साथ देंगे ?

विष्णुवर्धन—भारत के प्रत्येक नृपति को भारत की स्वतन्त्रता के युद्ध में सहयोग देने का निमन्त्रण हम देंगे, किन्तु मैं समझता हूँ कि वे हमें सहयोग देने की अपेक्षा दूणों के माण्डलिक बनकर अपने निहित स्वार्थों की रक्षा करना श्रेयस्कर समझेंगे। राजतन्त्र में यही तो त्रुटि है अतः हमें तो केवल जनशक्ति पर निर्भर रहना होगा।

जयदेव—किन्तु दूणों से युद्ध करने के लिए विशाल सेना और विपुल शस्त्रास्त्र की आवश्यकता होगी। इन साधनों को जुटाने के लिए धन चाहिए।

विष्णुवर्धन—सम्राट और राजा सैनिकों और धन की प्राप्ति कहाँ से करते हैं, सर्व साधारण जनता से ही न ! हम मातृभूमि की स्वाधीनता के नाम पर माताओं से उनके पुत्रों की, पत्नियों से पतियों की, बहनों से भाइयों की भीख माँगेंगे। हमारे देश की प्रत्येक कुटी से धन-जन की वर्षा होगी। रण-नाद से दशों दिशाएँ गूँज उठेंगी।

धर्मदास—तुम समझते हो जनता स्वेच्छा से हमें धन-जन की सहायता करेगी—किन्तु शास्त्र कहते हैं कि धन-प्राप्ति के लिए दण्ड चाहिए।

विष्णुवर्धन—जनता के हृदय में जन्म-जात स्वाधीनता की भावना ही हमारा राजदण्ड होगा। मैंने आज दशपुर के तक्षमन, कर्मार, हिरण्यकार, चर्मकार, वाय, उपलप्रक्षिणी, तिलपिषक आदि श्रेणियों के अध्यक्षों को आमन्त्रित किया है। स्वाधीनता-संग्राम में ये श्रेणियाँ क्या सहयोग देंगी इस पर इनसे आज विचार-विनिमय

करना है ।

धर्मदास—इन्हीं अध्यक्षों में कोई विश्वासघाती देशद्रोही नराधम हमारी योजनाएँ शत्रु को प्रकट कर दे तो ?

विष्णुवर्धन—आपकी आशंका निर्मूल नहीं है—लेकिन राजनीति के आचार्य चाणक्य ने मनुष्य के मन के भेद अंतर के रहस्यमय गत में से निकाल लाने के जो उपाय बताए हैं उनका प्रयोग कर परीक्षा लेकर मैंने खरे व्यक्तियों को ही बुलाया है ।

अभयदत्त—हमें तुम्हारे विवेक पर विश्वास है, विष्णु । अब यह बताओ कि हम लोगों से क्या कार्य लेना चाहते हो ?

विष्णुवर्धन—आप मेरे अनस्तित्व के आकाश में अवस्थित भारतीय गणतन्त्र के संधिविग्रहक हो ।

धर्मदास—और मैं ?

विष्णुवर्धन—तुम महाबलाधिकृत ।

धर्मदास—मेरी सेना ?

विष्णु—भारत का प्रत्येक शस्त्र धारण करने वाला युवक आपका सैनिक है ।

[कुछ दूर वीणा-वादन की ध्वनि सुनाई देती है
जो निकटतर होती जाती है ।]

मंदाकिनी—इस सुनसान वन-पार्यट्य प्रदेश में वीणा कौन बजा रहा है ।

सुहासिनी—जान पड़ता है वत्स है । बड़ी जल्दी ध्यान गया तुम्हारा !

मंदाकिनी—और बहुत जल्दी पहचाना तुमने !

[वीणा बजाते हुए ब्रह्मचारी के वेश में वत्स का प्रवेश ।]

मंदाकिनी—किस निराशा ने तुम्हें वैराग्य की रागिनी छेड़ने को विवश किया है ?

वत्स—देवि, ब्रह्मचारी ने तो गृहस्थाश्रम के प्रथम सोपान पर भी चरण

नहीं रखा—वैराग्य तो उससे बहुत दूर है ।

सुहासिनी—तो निराश क्यों होते हो, युवक ! (मंदाकिनी की ओर स्मितमयी चितवन डालकर) कोई सुन्दरी आषाढ़ी आँखोंसे रस-वृष्टि करके ब्रह्मचर्य की शुष्कता को रस प्लावित कर देगी ।

विष्णुवर्धन—किन्तु, इसके सखा नाम के देवता का अभिशाप ब्रह्मचारी को चिरकाल तक गृहस्थाश्रम की सीढ़ियों पर पदार्पण करने से वंचित रखेगा ।

अभय—और गृहस्थाश्रम की सीढ़ियों पर चढ़ चुके हैं उन्हें भी वैराग्य के शिखरपर ढ़केलकर पाताल में कुदाकर प्राण विसर्जन करनेको बाध्य करेगा ।

सुहासिनी—प्राण विसर्जन करने को बाध्य करेगा या वीर-गति प्राप्त करने को ?

मंदाकिनी—प्राणविसर्जन कहो या वीर गति प्राप्त करना— दोनों का अर्थ है मृत्यु !

विष्णुवर्धन—किन्तु, मैं कहता हूँ प्रीत का प्रपंच और मृत्यु के भय को राजनीति के रगमंच पर स्थान नहीं मिलेगा, अतः इस चर्चा को समाप्त करो और वत्स, यह बताओ कि तुमने उज्जयिनी में क्या किया ?

वत्स—मैंने विजय प्राप्त की ?

विष्णुवर्धन—कैसी विजय ?

वत्स—विजय, कंचनी के मन पर वत्स की विजय !

मंदाकिनी—मैंने समझा था तुम तोरमाण को बंदी बनाकर लाए हो, किन्तु ज्ञात हुआ कि स्वयं बंदी होकर आए हो ।

सुहासिनी—सर्वथा असत्य, बंदी होने और आने में विरोधाभास है । बंदी हुए तो आए नहीं, आए तो बंदी नहीं हुए । हाँ, आकर बंदी हुए ऐसा कहो तो ठीक है ।

मंदाकिनी—यह क्यों न कहा जाए कि आकर भी नहीं आए ।

वत्स—या यह कहो कि बन्दी होकर भी वत्स बन्दी नहीं हुआ ।

विष्णुवर्धन—परिहास छोड़ो वत्स, और काम की बात करो । तुमने उज्जयिनी में क्या तीर मारा ?

वत्स—ऐसा तीर मारा कि सोने का हिरण जीतेजी मर गया । वत्स ने ब्रह्मचर्य के तेज और महामुनि नारद की प्राण-प्रिया वीणा के स्वरों की माधुरी से जादूगरनी का मन जीत लिया, जिसके हाथ में सबके मन हैं ।

मंदाकिनी — जान पड़ता है कि महाकाल की नगरी में भांग-घतूरा खाकर तुम अपनी सुधबुध कैलास पर्वत पर चढ़ा आए हो ।

वत्स — नहीं देवि, मेरी सुधबुध सौन्दर्य की सुरसरि के तट पर ही लहरें गिन रही हैं, मैं जो कह रहा हूँ वह परम सत्य है । हमें हमारी सेना का निर्माण करना है—इसलिए...

अभय—इसलिए, कवि-सम्राट, वेश्याओं का दल लेकर रक्त के प्यासे रिपु से संग्राम करोगे ?

वत्स—कलिकाल के महारथी अर्जुन अभयदत्ताजी, मैं आपकी भाँति अग्नि-बाण छोड़ना नहीं जानता । मैं तो शब्द-बाण से ही कंचन-मृग को घायल कर लेता हूँ—काव्य और कला पर मैं शस्त्रों की सी धार धरना चाहता हूँ ।

धर्म—साधु-साधु, तो यह कहो कि कंचनी के नयन-बाण का प्रयोग करोगे । उपाय अति उत्तम है, किन्तु यह स्थायी संरक्षण नहीं है ।

मंदाकिनी—और इससे भारतीय महिलाओं की मर्यादा पर प्रहार होगा ।

विष्णुवर्धन—और पुरुषोंका पुरुषार्थ पीड़ित होगा । राजनीति कवि-कल्पना नहीं है, वत्स ! हमें तो भारतीय हृदयों में स्वत्व-रक्षा, स्वाधीनता-प्रेम और स्वाभिमान के लिए मर-मिटने का पागलपन जाग्रत करना होगा ।

वत्स—यही तो मेरा अभीष्ट है । मैंने सोचा है कि स्वाधीनता-प्रेम, देश-भक्ति और वीरत्व की भावनाओं से ओत-प्रोत नाटकों के अभिनय

द्वारा जन-मन के यौवन को जाग्रत किया जाए। इस कार्य में कंचनी का सहयोग उपयोगी है।

अभय—हः हः, कवि-सम्राट, कंचनी के नूपुरों की ध्वनि और रूप-किरणों ने तुम्हारे ज्ञान-तन्तुओं को मूर्छित कर दिया है, इस कारण तुम देश के नियमों को भूल गए हो। वेश्या पर राज्य का अधिकार होता है। क्या तुम समझते हो धन्यविष्णु उसे मुक्त कर देगा।

वत्स—हूँ। (सोच में पड़ जाता है)

विष्णु—तुम्हारी कल्पना का म्वर्ण-महल धराशायी हो गया।

मंदाकिनी—नहीं। मैं वत्स की कंचनी बनूंगी।

सुहासिनी—अर्थात् वत्स की नायिका बनोगी। जोड़ी तो सुन्दर रहेगी।

अभय—समाज भद्र महिला का रंगमंच पर अभिनय करना उचित नहीं - समझता।

मंदाकिनी—देश के प्राणों में नवीन रक्त-मचार करने के लिए मुझे अभद्र कहलाना भी स्वीकार है।

विष्णु—देश के प्रसुप्त पुरुषार्थ को जाग्रत करने के लिए भद्र महिलाओं का रंगमंच पर अभिनय करना पुण्य-कार्य है।

सुहासिनी—अवश्य ही, यदि मुझे अभी अपने अस्तित्व को गुप्त न रखना होता तो मैं भी अभिनेत्री बनती।

उमा—मैं भी इस कार्य के लिए प्रस्तुत हूँ।

धर्म—बस तो फिर तुम्हारा कार्य बन गया, वत्स। अब यह कहो नाटक कौन सा खेलोगे ?

वत्स—सोचा था कवि-कुल-शिरोमणि कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तल का अभिनय किया जाए। कितना गम्भीर है वह ! कितनी कुशलता से उसमें भारतीय आदर्शों का मार्मिक निरूपण किया गया है उसमें ? रस और लालित्य का भंडार है वह, किन्तु इस समय तो सर्व साधारण के रोम-रोम को उन्मत्त कर देने वाली

सुरा चाहिए ।

विष्णु—तब !

वत्स—मैंने स्वयं ही नाटक लिखा है। नाम है प्रथम जोहर । अलक्षेन्द्र के आक्रमण के समय अग्रश्रेणियों ने बहुसंख्यक, साधन-सम्पन्न, सुव्यवस्थित और सुशिक्षित शत्रु-सेना से डटकर लोहा लिया और पराजय को अनिवार्य समझ पराधीनता स्वीकार करने की अपेक्षा जोहर की ज्वाला में जीवनार्पण करना श्रेयस्कर समझा ? किस तरह उन्होंने अपने घरों में स्वयं आग लगाकर आकाश-चुम्बी लपटों में स्त्री-बच्चों सहित प्रवेश किया । इस कथानक को रंग-मंच पर प्रत्यक्ष देखकर क्या भारतीयों के हृदयों में ज्वाला नहीं धधक उठेगी ।

जयदेव—इस घटना की पुनरावृत्ति एरण में हो चुकी है ।

वत्स—हाँ, और मैं अतीत को चित्रित करने के बहाने वर्तमान राज-नीति ही तो आँकना चाहता हूँ । इसी प्रकार जन-मन जागेगा ।

विष्णु—निश्चय ही वत्स, शत्रु पर अचूक आक्रमण करने के पूर्व जन-मन को जाग्रत करना परमावश्यक है ।

[कई श्रेणियों के अध्यक्ष आकर विष्णुवर्धन को नतमस्तक होकर अभिवादन करते हैं । विष्णुवर्धन हाथ जोड़कर उत्तर देता है ।]

विष्णु—अब गुहा में चलकर अपनी योजना पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए ।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

आठवाँ दृश्य

[स्थान—उज्जयिनी से दशपुर जाने वाला मार्ग । समय—मध्याह्न । एक भील, जिसका नाम मालू है और एक क्षत्रिय सैनिक जिसका नाम भीमदेव है, दशपुर की दिशा में जा रहे हैं । मालू उसके जातीय वेश-भूषा में है । उसके कंधे पर धनुष टंगा हुआ है और हाथमें कुछ बाण हैं । भीमदेव सैनिक वेश में है । उसके कमर से तलवार बँधी हुई है । कहीं से “ बचाओ, बचाओ ” का आर्तनाद सुनाई देता है, जो सहसा बंद हो जाता है ।]

मालू—जान पड़ता है बर्बर हूण किसी अबला पर अत्याचार कर रहे हैं ।

भीमदेव—नगर के बाहर चाँडालों के उपयोग के लिए जो कूप है संभवतः वहीं से यह आर्तनाद आया है ।

मालू—हमें उसकी रक्षा करनी चाहिए ।

भीमदेव—और अपने प्राण गँवा देने चाहिए । एक चाँडाल स्त्री के लिए अपनी जीवन-संगिनी का सुहाग लुटवा देना चाहिए ।

मालू—अपने आपको क्षत्रिय—राम और कृष्ण के वंशज—सूर्य और चन्द्र के अंश कहने वाले, भीमदेव, तुम चाँडाल को मनुष्य नहीं समझते । तुम आर्यजन, चाँडाल और अस्पृश्यों को सेवा का पुरस्कार तिरस्कार से देते हो ।

भीमदेव—इसमें तिरस्कार की कोई बात नहीं है, वर्ण और जाति की व्यवस्था तो समाज की सुविधा के लिए है ।

मालू—समाज की सुविधा के लिए, उन्हें नगर से दूर बसाया जाता है । तुम्हारी सेवा करने जब वे नगर में प्रवेश करते हैं तब उनकी अपवित्र छाया पड़ने से आर्यों की कंचन-काया अपवित्र न हो जाए, इसलिए उन्हें लकड़ी बजाते हुए आना पड़ता है ।

भीमदेव—वे गंदे काम करते हैं, मालू, इसलिए शिष्ट समाज में उन्हें

स्थान कैसे दिया जा सकता है ?

मालू—शिष्ट समाज ! जो हाथ में सत्ता और धन आ जाने पर अपने ही समाज के अंगों के स्वाभाविक रक्त-संचार को बाँधकर उन्हें सुखा डालते हैं, विकास और उन्नति के सारे मार्ग रोक कर उन्हें गंदे कार्य करने और गंदे बने रहने को बाध्य करते हैं, जो समाज के शरीर में स्वयं कोढ़ के कीटाणु प्रविष्ट कर गले हुए अंगों से नाक-भों सिकोड़ते हैं वे ही शिष्ट समाज के कर्णधार कहाते हैं। उन्होंने केवल चाँडालों को ही नहीं, पुलिंद, शवर भील, मीना, गोंड और कोल आदि भारत के आदिवासियों को भी नगरों के सुख-साधनों से वंचित कर वन-पशुओं की भाँति वन-वन भटकने को बाध्य कर दिया है। अपने आपको सुसंस्कृत और सभ्य घोषित करने वाले आर्यों को इस सामाजिक महापाप का मोल चुकाना ही पड़ेगा। हूणों ने आर्यों पर जो अत्याचार किए हैं उन से तो प्राप्य ऋण का ब्याज भी अभी नहीं चुका। आर्यों द्वारा प्रपीड़ित, पद-दलित कथित अस्पृश्य और चाँडाल एवं आदिवासी वर्ग युग-युग का ऋण युग-युग तक चुकाएगा। तुम अपनी भद्रता को लेकर यहीं खड़े रहो लेकिन मैं तो मनुष्यता का कर्तव्य पूरा करने जाता हूँ।

[मालू प्रस्थान करने को कदम उठाता है]

लेकिन भीमदेव उसका हाथ पकड़ लेता है।]

भीम—बौद्ध भिक्षुओं की शिक्षाओं ने तुम लोगों को आर्यों के विरुद्ध इतना भड़का दिया है कि तुम्हारी सोचने की शक्ति भी नष्ट हो गई है। जानबूझकर मृत्यु के मुँह में मत घुसो। अत्याचारी हूण कभी इक्के-दुक्के नहीं रहते। शत्रु का बल जाने बिना उससे लोहा लेने चल पड़ना आत्महत्या है।

[उसी समय चार हूण सैनिक एक युवती को रस्सी से बाँधे हुए आते हैं। युवती का मुँह]

भी कपड़े से बाँध रखा है। युवती प्रार्थनाभरी दीन आँखों से मालू और भीमदेव की तरफ देखती है। मालू धनुष पर बाण चढ़ाता है।]

मालू—छोड़ दो इसे ?

एक हूण सैनिक—हूणों के मार्ग में आने का परिणाम जानता है तू ?

[तीन हूण सैनिक मालू पर आक्रमण करते हैं, एक युवती को सम्हाले रहता है। इतने निकट के युद्ध में धनुष-बाण को बेकार समझकर मालू विद्युत् गति से भीमदेव के कमर में बँधी हुई तलवार खींच लेता है। मालू असि-संचालन में भी इतना निपुण है कि तीनों हूण सैनिकों का सफलतापूर्वक सामना करता है। इसी समय कहीं से दो तोर आते हैं और दो हूण सैनिकों के हृदय में प्रवेश कर जाते हैं वे आह करके धराशायी हो जाते हैं। इस बीच मालू के आघात से तीसरा हूण भी पृथ्वी पर लोट जाता है। चौथा हूण भागने को उद्यत होता है कि एक बाण उसके भी वक्षस्थल को बेध देता है और वह भी धराशायी हो जाता है। युवती, मालू और भीमदेव जिस तरफ से बाण आ रहे थे उधर देखते हैं। सुहासिनी और उमा प्रवेश करती हैं। सुहासिनी युवती के बंधन खोलने बढ़ती है।]

भीमदेव—वह चांडाल है—अस्पृश्य।

सुहासिनी—चांडाल वे हैं जो मनुष्य को अस्पृश्य समझते हैं। नीच, नारकी कुत्ते वे हैं जो आँखों से नारी का अपमान देखकर भी विचलित नहीं होते।

भीमदेव—देवि, क्षमा करें मुझे सैनिक अनुशासन ने रोक रखा था। मालव प्रदेश हूण-सम्राट तोरमाण के आधीन है और महाराज धन्यविष्णु मांडलिक राजा है। उनकी सेना का एक मालव-सैनिक हूणों के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण कैसे कर सकता है ? आर्यों का जातीय गुण है कि वे विश्वासघात नहीं करते।

सुहासिनी—विश्वासघात किमके प्रति ? उसके प्रति जो स्वयं विश्वासघाती है। जिसने अपने मुख के लिए देशके प्रति, सारे भारतवासियों के प्रति और सम्पूर्ण मानवताके प्रति विश्वासघात किया है ? उसके प्रति विद्रोह करना तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है।

भीमदेव—वह राजा हैं।

सुहासिनी—नहीं, वह अपराधी है, जनता-जनार्दन के राज-दरबार ने उसे अपराधी घोषित किया है, उसने अपनी माँ की छाती पर हूणों को नृशंसता का नंगानाच करने दिया है।

[इसी बीच चांडाल युवती के बंधन खुल चुकते हैं। वह कृतज्ञता के आँसू भर कर सुहासिनी की तरफ देखती है।]

युवती—आप कौन हैं, देवि ? आकाश से...

सुहासिनी—आकाश से उतरने वाली देवी मैं नहीं हूँ, बहन ! मैं भी तुम्हारी जैसी एक अबला हूँ। यद्यपि मैंने राज-महल में जन्म लिया है लेकिन राजमहल की ऊँचाई या विशालता मेरी काया पर पड़ने वाली विदेशी की विलासपूर्ण दृष्टि को रोक नहीं सकी और मुझे अपनी रक्षा के लिए शस्त्र हाथ में सम्भालना पड़ा। जब मेरा अग्रज ही शत्रु का दास बन कर मेरे सतीत्व-नाश का तमाशा देखने को प्रस्तुत हो गया तब मेरी चिरसंगिनी कृपाण ने मेरा साथ दिया। तबसे मैं निकल पड़ी हूँ भारत के पुरुषों में सोए हुए शंकर के तीसरे नेत्र को खोलने के लिए, भारत की नारियों के हृदय में बसी हुई कराला काली को जगाने के लिए।

भीमदेव—तो आप राजकुमारी सुहासिनी...

सुहासिनी—राजकुमारी सुहासिनी तो मर गई है, जो तुम्हें दिखाई दे रही है वह एक मालव-कन्या है। वह विशेष रूप से मालव प्रदेश और साधारणतः संपूर्ण भारत के आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुषों को विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए ललकार रही है।

मालू—किंतु देवि, आर्यों के राज-महलों और अट्टालिकाओं की रक्षा करने हम आदिवासी और ये अस्पृश्य रक्तदान क्यों करें ? अब तो समय आया है जब सहस्रों वर्षों से सताए जाने वाले वर्ग आर्यों से प्रतिशोध लें, हूण-सैनिकों द्वारा प्रज्वलित आत्याचार की लपटों को हम फूंक मार कर और भी भयंकर रूप दें।

उमा—किन्तु, विदेशी के अत्याचार की तलवार आर्य, अनार्य स्पृश्य, अस्पृश्य का भेद नहीं जानती। आज की घटना इसकी साक्षी है।

सुहासिनी—मेरे भाई, आर्य, और द्रविड़ सहस्रों वर्षों से इस देश में साथ रहते आए हैं। दोनों ही इस देश को अपनी जन्म-भूमि मानते हैं। हमें एक होकर इस देश की स्वाधीनता के बैरी विदेशियों से संग्राम करना होगा।

मालू—संग्राम करना होगा, किस आशा से ? श्वानों से भी हीन जीवन बिताने के लिए ? आर्यों के डाले हुए टुकड़ों से उदर-पूर्ति करने के लिए ? अश्वों की भाँति आर्यों के ऐश्वर्य-रथ को खींचने के लिए ?

सुहासिनी—तुम्हारा क्रोध अकारण नहीं है, भाई ! प्रत्येक विवेकशील हृदय को आशंका है कि भारत में सामाजिक वैषम्य की जो खाइयाँ खुद गई हैं वे एक न एक दिन हमारी स्वाधीनता को डस लेंगी और विजयी विदेशी विजित आर्यों की भी वही स्थिति कर देंगे जो आर्यों ने आदिवासियों की है।

मालू—इससे आदिवासियों के चिर-पीड़ित हृदयों को आत्म-संतोष प्राप्त

होगा ।

सुहासिनी—आत्म-सन्तोष ! यह तो अपनी नाक कटाकर दूसरे का अपशकुन करने वाली बात हुई । आर्य दास बनेंगे तब भी आदिवासी राजा नहीं बन जाएँगे। पाँव पकड़ कर आर्यों को भी रसातल में खींचकर आदिवासी उन्नति के शिखर पर नहीं चढ़ पाएँगे ।

मालू—तब हमें क्या करना चाहिए ?

सुहासिनी—हमें मिलकर अपने शत्रु को भारतभूमि से निर्वासित करना पड़ेगा । स्वाधीनता-संग्राम में आर्य और द्रविड़, स्पृश्य और अस्पृश्य जब कंधा से कंधा भिड़ाकर बैरी से लोहा लेंगे तो हमारे शरीर के साथ हृदय भी निकट आएँगे । सामाजिक विषमता की खाइयाँ स्वयं पट जाएँगी । हम सब समता के आकाश के नीचे प्रीत के धरातल पर खड़े होकर मानवता की सांस लेंगे ।

युवती—क्या कभी ऐसा होगा ?

सुहासिनी—ऐसा होगा अथवा नहीं, इसका उत्तर समय के गर्भ में है । हमें शिव, सत्य और सुन्दर के पथ पर चले चलना चाहिए । हम कर्म करेंगे तो महाकाल हमें सफलता देगा ही ।

भीमदेव—निश्चय ही स्वर्गिक संदेश की वीणा बजाने वाली नवयुग की गायिका ! आप जैसी देवियाँ जब देश के बल, विक्रम और विवेक को जाग्रत करने के लिए घर-घर तान सुनाएँगी तो हम आत्मा की ध्वनि को सुनने में अवश्य समर्थ होंगे । मैं (भीमदेव सुहासिनी के चरण छूता है ।) महाकाल को प्रत्यक्ष समझकर शपथ ग्रहण करता हूँ कि अत्याचारी हूणों से भारतभूमि को मुक्त किए बिना विश्राम नहीं लूँगा ।

सुहासिनी—हमें प्रत्येक भारतीय से ऐसी ही शपथ लेनी है । हमारा प्रथम प्रहार जनता के आलस्य, अवहेलना, उपेक्षा और कातरता पर होगा । गई हुई स्वाधीनता को प्राप्त करना सरल नहीं है, विशेषतः जब कि हमारे ही देश के कुछ राजा-महाराजा,

घनकुवेर और धर्मांध पुजारी अपने निहित स्वार्थों को रक्षा करने के लिए देश की स्वाधीनता को बेचने को प्रस्तुत हैं। देश को स्वतन्त्र करने का भार आज सर्व साधारण जनता के कंधों पर आ पड़ा है।
बोलो तुम प्रस्तुत हो।

सब—हाँ, हम प्रस्तुत हैं।

सुहासिनी—तो एक स्वर से बोलो भारत माता की जय !

सब—भारत माता की जय !

पटाक्षेप

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

[स्थान—उज्जयिनी नगरी के बाहर जन-शून्य क्षिप्रा-तट ।
समय—रात्रि का प्रारंभ । गगन में चन्द्रोदय हो गया है ।
वत्स और कंचनी का प्रवेश । यद्यपि इस समय कंचनी
बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सुसज्जित और अलंकृत नहीं है
तथापि उसका स्वाभाविक सौन्दर्य शशि-किरणों से चुंबित
कुमुदिनी के समान प्रफुल्लित और उल्लसित है । चेदिनगरी
की मीनी रेशमी साड़ी में कंचन-तन की आभा अनौखा
आकर्षण उत्पन्न कर रही है । वत्स मुग्ध दृष्टि से रूप-राशि
का पान करता हुआ मद्यप की भाँति लड़खड़ाता-सा चला आ
रहा है ।]

कंचनी—वत्स, क्षिप्रा के जनाकीर्ण जन-स्वपरिपूर्ण घाट से दूर इस
निर्जन स्थान पर मुझे क्यों ले आए हो ?

वत्स—और तुम क्यों चली आई हो ?

कंचनी—कृष्ण ने बंसी की तान में आह्वान-गान बजाया और राधा
घर में दीपक जलाते-जलाते उसे अनजला छोड़कर मंत्र-मुग्ध
सर्प की भाँति चली आई ।

वत्स—कृष्ण भी है, राधा भी है, दोनों के श्वासों में उमड़ने लगे प्रीत-
पवन के स्पर्श से महाकाल की क्षिप्रा श्याम की यमुना बन गई
है । आकाश से शशि मुसकरा कर कह रहा है मैं राधा और कृष्ण
का रास देखना चाहता हूँ ।

कंचनी—तुम नृत्य करोगे मेरे साथ ?

वत्स—तुम नृत्य करोगी मेरे साथ ?

कंचनी—दोनों एक दूसरे के साथ नृत्य करेंगे ।

वत्स—(आनंद विभोर होकर-दीर्घ श्वास प्राणों में भरता हुआ) अहा !

कंचनी—यह अकारण 'अहा' कैसी ?

वत्स—अकारण नहीं, सौरभ के एक स्निग्ध झोंके ने प्राणों को सुरभित कर दिया है ।

कंचनी—हाँ, निकट ही केतकी-कुंज है ।

वत्स—केतकी-पराग से अधिक सुरभित तुम्हारी सांसें हैं, कंचनी ।

कंचनी—कंचन में सुवास नहीं होता, युवक ! अपनी नाभि में कस्तूरी निहित रखने वाला मृग संसार में सुवास को क्यों खोजता है ?

वत्स—तो मृग समझकर ही शवरी ने मुझ पर बाण छोड़ा है !

कंचनी—जब से राम ने शवरी के जूठे बेर खाए हैं शवरी ने बाण छोड़ना छोड़ दिया है ।

वत्स—छोड़ दिया है, किंतु जिस मृग का तुमने बध कर दिया है उसे जीवन-दान कौन देगा ? बध कर चुकने के बाद भगवान बुद्ध के अहिंसा-धर्म की दीक्षा लेने का ढोंग मत करो ।

कंचनी—तो क्या तुम चाहते हो कि शवरी संसार भर के मृगों को बाणों से विद्ध करती फिरे ।

वत्स—तुम्हें अपना प्राकृत धर्म तो पालना ही पड़ेगा । मैं तो रूप का वह रूप देखना चाहता हूँ जो पृथ्वी-वासी मानव के भोले भाले हृदय ही नहीं, अपितु गगन-निवासी नक्षत्रों को भी बेध दे ।

कंचनी—तुम कैसे प्रेमी हो जो उर्वसी को आकाश में आखेट करने भेजना चाहते हो ।

वत्स—हाँ, क्योंकि आकाश के अनगिनती तारकों के मध्य एक अमंगल-कारी धूम्रकेतु का उदय हुआ है—उसके विनाश में ही संसार का मंगल है ।

कंचनी—हाँ, एक धूम्रकेतु को मैं जानती हूँ । एरण के रण-क्षेत्र में, ऐसी

ही मादक चाँदनी रात में, मैंने एक विहग पर बाण छोड़ा था।
किन्तु वह बाण विहग के वक्षस्थल में अवस्थित लोह-खंड से टकरा
कर खंड-खंड हो गया।

[खड़खड़ाहट सुनाई देती है। कंचनी चौकती
है।]

वत्स—जान पड़ता है निकट के वन से मृग क्षिप्रा का जल पीने आए है।

कंचनी—ग्रौर सिंह आया हो तो।

वत्स—नहीं, शृगाल हो सकता है।

[सहसा धन्यविष्णु का प्रवेश। कंचनी की
पीठ उसकी तरफ है। इस प्रकार
अनलंकृति, असज्जित साधारण वेश में उसने
कंचनी की कभी नहीं देखा। वह कंचनी के वहाँ
होने की कल्पना भी नहीं करता था इसलिए
उसका उस पर ध्यान भी नहीं जाता।]

धन्यविष्णु—हीन है मुझे शृगाल कहनेवाला ?

वत्स—मैं नहीं, क्षिप्रा की हिलोरें ऐसा उच्चारण करती हैं।

[इसी समय मंदिर के घंटे की ध्वनि सुनाई
देती है।]

वत्स—सुनो महाकाल के मंदिर के घंटे का महारव ध्वनित कर रहा है
कि मालव-नरेश धन्यविष्णु, शृगाल है।

[धन्यविष्णु तलवार म्यान से खींचता है।

कंचनी धन्यविष्णु के सम्मुख आती है।]

कंचनी—मालवपति को कंचनी सादर अभिवादन करती है।

[धन्यविष्णु विस्मित होता है।]

धन्यविष्णु—कंचनी !

कंचनी—मेरे लिए यह प्रसन्न और गदगद होने का समाचार है कि

मालव-नरेश के हाथों में तलवार पकड़ने की शक्ति शेष है ।

धन्यविष्णु—कंचनी व्यंग-वचन के विषबुभे बाण मुख के तूणीर में ही रहने दो और यह बताओ कि यह महा मूर्ख युवक कौन है ?
कंचनी—पहले इस महाकाली की रक्त-लोलुप-जिह्वा-सी असि को म्यान में अवस्थित कर दीजिए तब बताऊँगी ।

[धन्यविष्णु तलवार को म्यान में करता है ।]

धन्यविष्णु—अब बताइए ।

कंचनी—बताऊँ क्या, अभी तक निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँची हूँ ।

धन्यविष्णु—किस बात के परिणाम पर ?

कंचनी—इस बात के परिणाम पर कि मूर्ख कौन है ?

धन्यविष्णु—(सक्रोध) अर्थात् तुम मुझे भी.....

कंचनी—नहीं राजन, मैं केवल मालव-महीपति धन्यविष्णु की बात नहीं मानवमात्र की बात सोच रही हूँ । मालवपति, बाहुओं में बल और प्राणों में प्राण रखते हुए भी मनुष्य वृषभ की भाँति पराधीनता का, जुआ बिना विरोध प्रदर्शित किए वहन करता है, हाथों में गला घोट कर मर जाने की शक्ति रखते हुए भी नारी रूप-जीवा बनती है और इस युवक की भाँति भद्रकुल में जन्म लेने वाले व्यक्ति रूप-जीवा से प्रेम-निवेदन करने का अवसर खोजते फिरते हैं ।

धन्यविष्णु—तो यह कहो कि इस उन्मत्त श्वान का प्रेम-निवेदन सुनने के लिए कंचनी निर्जन क्षिप्रातट पर आई है, किन्तु कंचनी मैं अपने किसी प्रतिस्पर्धी को सहन नहीं करूँगा । इस युवक को मुझसे द्वंद्व-युद्ध करना पड़ेगा । (वस्स से) निकालो तलवार ।

[धन्यविष्णु तलवार तानता है लेकिन वस्स अविचलित खड़ा रहता है ।]

वस्स—मालव के मांडलिक, धन्यविष्णु, वास्तविक शूर की असि म्यान से प्रकट होकर रक्त-स्नान से पवित्र हुए बिना पुनः विवर में प्रवेश नहीं करती, और अभी मेरी असि विश्राम.....

धन्यविष्णु—किंतु मेरी तलवार तेरे हृदय में अपने विवर का निर्माण करेगी ।

[धन्यविष्णु प्रहार करने को उद्यत होता है
किंतु कंचनी हाथ पकड़ लेती है ।]

कंचनी—रहने भी दो वीर-शिरोमणि मालव-महीपति । युद्धेच्छु से ही युद्ध करना उचित है । आपकी इस पागल से तुलना ही क्या ? यह तो ब्रह्मला की भाँति नृत्य करता है, तुंबुरु की भाँति वीणा बजाता है—वाल्मीकि की भाँति छंद-रचना करता है और पपीहे की तरह प्राणों की पुकार को गीतों में भरता है । अत्यंत कोमल प्राणी है यह, क्या वीर पुरुषों की तलवार चन्द्र-किरणों पर उठती है, कोमल कमलों को काटती है । आपके हाथों में शक्ति है तो उस चट्टान का वक्षस्थल विदीर्ण करो जिसे मेरे गान की कोकिला, मेरे नृत्य के मयूर, और मेरे रूप-यौवनके राजहंस अनुराग-रंजित नहीं कर सके ।

धन्यविष्णु—तुम्हारा तात्पर्य ?

कंचनी—सूर्य-प्रकाश को भी क्या दीप जलाकर दिखाना पड़ेगा ।

वत्स—इनमें इतनी ही सृभ होती तो क्या यह अपनी सहोदरा को.....

धन्यविष्णु—(क्रोध से उन्मत्त होकर) नीच, नराधम !

[धन्यविष्णु वत्स पर प्रहार करता है, किंतु वत्स विद्युत्गति से तलवार निकाल कर उस पर प्रहार मेल लेता है । दोनों युद्ध करते हुए प्रस्थान करते हैं । कंचन प्रशंसाभरी मुग्ध दृष्टि से निहारती रहती है ।]

कंचनी—साधु, साधु, रण भी सृष्टि के रंगमंच पर गाया जाने वाला एक संगीत है । संगीत-शास्त्र के सब रागों से विलक्षण है पुरुष के पौरुष का राग । जब तलवार से तलवार बजती है तब जो भंकार उठती है उसकी तुलना में वीणा की भंकार भी तुच्छ है । मैं समझती थी कवि केवल गीत गाना जानता है—तलवार तो केवल

प्रदर्शन के लिए बाँध रखी है, किंतु आज मैंने उसके पराक्रम का ऐसा तांडव देख लिया है जिसके तोड़ भुलाए भी नहीं भूलेंगे। स्वप्न और जाग्रति में स्मृति के घन-मंडल में विद्युत-रेखा सी तलवार चमकती दिखाई देगी।

[कंचनी फिर कुछ देर मुग्ध होकर देखती है।
वत्स धन्यविष्णु का हाथ पकड़े हुए उसे बलपूर्वक
लाता हुआ प्रवेश करता है। धन्यविष्णु के हाथ
में तलवार की केवल मूठ रह गई है।]

कंचनी—(धन्यविष्णु से) व्यर्थ ही मूल्यवान तलवार की हानि उठाई।
आपके इंगित पर सहस्रों तलवारें इस उद्धत युवक के शरीर को
सहस्राक्ष बनाने के लिए प्रस्तुत हो सकती हैं। यदि मालववीर
प्रमादवश मालवपति की आज्ञा की अवहेलना करें तो बर्बर विदेशी
हूण तो प्रस्तुत हैं ही। अपने मित्र के लिए वे क्या नहीं करेंगे ?

[इस बीच वत्स धन्यविष्णु का हाथ छोड़
देता है।]

धन्यविष्णु—कंचनी, तलवार से भी तीक्ष्ण जिह्वा को विश्राम दो।
नहीं तो.....

कंचनी—नहीं तो मेरी जिह्वा को खंडखंड कर दोगे जैसे इस युवक ने
आपकी असि को कर दिया है।

धन्यविष्णु—कंचनी, मेरा अमान करके तुम मृत्यु का आवाहन कर
रही हो।

कंचनी—(धन्यविष्णु के पैरों में बैठकर हाथ जोड़कर) क्षमा करो देव,
अभी मेरी मरने की इच्छा नहीं है। परिहास-सीमोलंघन कर गया,
इस कारण आपने समझ लिया कि मैं आपका अपमान कर रही हूँ।
मैं तो आपकी चिर-सेविका हूँ—आपके इंगित पर मेरे नूपुरों ने
रात्रियों को मुखरित किया है, भला मैं आपके प्रति घृष्टता करने का
दुस्साहस कर सकती हूँ।

धन्यविष्णु—मायामयी, तुम्हारे कौनसे शब्द परिहास हैं और कौन से उपहास इसका अनुमान करना भी कठिन है ।

कंचनी—(उठकर खड़ी होकर) राजन, संपूर्ण विश्व ही विधाता का क्रीड़ा-कौतुक है । न यहाँ कोई राजा है, न कोई नर्तकी है, न कोई कवि है, न यह क्षिप्रा की धारा । सब कुछ अनस्तित्व के आकाश में माया का खेल है । कंचनी ने जीवन को खेल समझकर ही खला है—किंतु खेल में वह छल नहीं करेगी । राजा को राजा के—और इस युवक के समान रंग याचकों को उनके योग्य ही स्थान देगी । इस युवक पर भी आप क्रोध न करें क्योंकि इस समय यह प्रमत्त है, इसीलिए कुछ दुस्साहस कर बैठा ।

धन्यविष्णु—कौन है यह ?

कंचनी—कंचनी से प्रीत करने का स्वप्न देखने वाले अगणित तारकों में से एक यह भी है । अभी तक तो नाम भी नहीं पूछ पाई हूँ ।

धन्यविष्णु—तो तुम इससे मिलने यहाँ क्यों आई ?

कंचनी—मैंने स्वप्न में भी इससे मिलने की कामना नहीं की थी—यह स्वयं ही मेरे मार्ग में आ पड़ा ।

वत्स—नर्तकी, तुम मेरा अपमान कर रही हो । मैं तुम्हें दंड दूँगा ।

कंचनी—दण्ड दोगे ? जैसे भारत के सम्राट हो । (धन्यविष्णु से) सुना इस युवक के कथन को । इस प्रकार बोलता है मानो मिहिर-कुल का प्रपितामह है ।

धन्यविष्णु—छोड़ो भी इस मूर्ख को, मेरा रथ पास ही खड़ा है, चलो तुम्हें पहुँचा दूँ ।

कंचनी—कहीं मुझसे क्रुद्ध होकर मुझे कारागार में तो डालने का उपक्रम नहीं कर रहे ?

धन्यविष्णु—(सुदीर्घ निश्वास छोड़ कर) यदि इतनी शक्ति मुझ में होती ।

कंचनी—यदि मालव-पति में इतनी शक्ति नहीं है तो यह पागल युवक

भी कंचनी का बाल बाँका नहीं कर सकता । आप निश्चित होकर राजमहल में सुख की नींद लीजिए—यह तस्कर मेरे यौवन-उपवन का एक पुष्प भी नहीं चुरा पाएगा । अब आई हूँ तो कुछ देर नौका-विहार करूँगी ...

धन्यविष्णु—तो मैं भी ।

कंचनी—नहीं, नहीं आप कष्ट न करें । न जाने किस समय आपके अभिन्न हृदय मित्र युवराज मिहिरकुल को आपकी आवश्यकता आ पड़े । कितना प्रेम है उनका आप पर? और क्यों न हो—भारत में हूण-साम्राज्य के सुख-स्वप्न का आधार जब आप ही हैं, जैसे पृथ्वी शेषनाग के सहस्र फणों पर आधारित है । अब आप इस भार को फेंकना भी चाहें तब भी आपके विष्णु ऐसा करने नहीं देंगे ।

धन्यविष्णु—कंचनी, तुम मुझे विचार-सागर में निमग्न कर देती हो ।

कंचनी—कितु, फिर भी आप अपने विष्णु के क्षीर-सागर के बाहर नहीं आ सकोगे, इसलिए सौचने-विचारने की भंभट मत पालो । आप तो निश्चित होकर रत्न-खचित स्वर्ण-पर्यंक पर मखमली गद्दों पर गुलाब की पंखुरियाँ बिछाकर सो जाइए । जिन्हें शूलों पर रात बितानी है वे तो बिताएँगे ही ।

धन्यविष्णु—(दीर्घ निश्वास सहित) हूँ, मैंने तुम्हें फूल समझा था कितु फूल में शूल...

कंचनी—और फूल ही शूल निकला ।

धन्यविष्णु—फूल ही शूल निकला ।

[विचारों में डूबा हुआ चला जाता है । वत्स और कंचनी एक-दूसरे की तरफ देखते हैं ।
कंचनी के अधरों पर मथुर मुसकान खेलती है
किन्तु वत्स गम्भीर बना रहता है ।]

कंचनी—वत्स !

वत्स—मैं तुमसे नहीं बोलूंगा । तुमने मुझे मूर्ख, पागल और न जाने

क्या-क्या कह डाला ।

[कंचनी बढ़कर वत्स का हाथ पकड़ लेती है ।]

कंचनी—मैंने सत्य ही तो कहा था । शास्त्रों में लिखा है—प्रेम करने वाले मूर्ख, पागल और अंधे होते हैं । जो तुम हो वही मैं भी हूँ । चलो, इस मादक चाँदनी रात में कुछ देर क्षिप्रा की हलकी हिलोरों पर अपनी जीवन-तरी को भुलाएँ । केतकी-कुंज से आने वाला सुरभित समीरण सांसों में नशा भर रहा है । ज्योत्सना से जगमगाती हुई क्षिप्रा की रजत-धारा गीत गा कर आमंत्रण दे रही है । दूर तक फैले हुए मालव भूमि के अफीम के समान काले-काले खेत आँखों को अलसित कर रहे हैं । चलो वत्स जीवन के दो क्षण कृतार्थ हो लें ।

[वत्स को खींच ले जाती है ।]

[पट-परिवर्तन]

द्वितीय दृश्य

[स्थान—सघन वन-खण्ड में गुहा-द्वार । समय-रात्रि । चाँदनी रात का प्रकाश । गुहा-द्वार से विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) आता है और गुहा-द्वार के भीतर हाथ बढ़ाता है । एक सुन्दर नारी-कर उसके हाथ में आता है जिसे ग्रहण कर वह खींचता है । ऐसा जान पड़ता है कि वह कुछ नीचे स्थान से किसी युवती को बाहर आने में सहायता प्रदान कर रहा है । विष्णुवर्धन के सहारे से सुहासिनी गुहा से बाहर आती है । दोनों सैनिक वेश में हैं । स्कन्धों पर धनुष, पृष्ठपर तूणीर और कटि-प्रदेश पर तलवार शोभित है ।]

सुहासिनी—(श्वास लेकर) ओह !

विष्णुवर्धन—त्यों परिश्रान्त हो गई ।

सुहासिनी—परिश्रान्त तो नहीं ।

विष्णुवर्धन—तब ?

सुहासिनी—तुमने मेरा पाणि-ग्रहण किया तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानों एक साथ सहस्र विद्युत-धाराएँ शरीर में प्रवाहित हो गई ।

विष्णुवर्धन—अथवा ऐसा ज्ञात हुआ कि एक साथ सहस्रों वृश्चिकों ने डस लिया ।

सुहासिनी—कदाचित्त तुम्हें ऐसा ही ज्ञात हुआ होगा ।

विष्णुवर्धन—मुझे तो ऐसा जान पड़ा जैसे सहस्र बज्र मेरी मुट्ठी में आ गए हैं ।

सुहासिनी—तो तुम समझते हो कि मैं बज्र के समान कठोर हूँ ।

विष्णुवर्धन—नहीं नारी पुरुष को बज्र से भी कठोर, शक्तिशाली और संहारक बनाने वाली महाशक्ति है ।

सुहासिनी—किंतु संहारक के प्रति प्रीति की अनुभूति नहीं भीति की प्रतीति होती है ।

विष्णुवर्धन—विधाता सृष्टिकर्ता, पालनहार के साथ ही संहारक भी है । संसार में संहार न हो तो बसुधा विषधरों और हिंसक जंतुओं से भर जाए और सृष्टि का जीवित रहना भी असंभव हो जाए । अशिव, अमंगलकारी का संहार कल्याणकारी होता है । कर्ता जब हर्ता बनता है तो क्या असुन्दर हो जाता है, सुहासिनी !

सुहासिनी—जो प्राणों को एक बार प्रिय लग जाता है वह प्रत्येक रूप में प्रिय ही लगता है, विष्णुवर्धन ।

विष्णुवर्धन—मैं यह नहीं पूछ रहा था ।

सुहासिनी—किन्तु, मैं निवेदन करना चाहती हूँ कि तुम्हारे लोचनों में स्नेह-सागर लहराता हुआ देखकर मैं जितनी पुलकित होती हूँ, प्रज्वलित ज्वालामुखी देखकर भी उतनी ही प्रफुल्लित ।

विष्णुवर्धन—मुझे देखने के अतिरिक्त कुछ और भी कार्य है तुम्हें,
सुहासिनी !

सुहासिनी—मैं चाहती हूँ कि तुम भी मुझे ही देखो ।

विष्णुवर्धन—तब देश को कौन देखेगा ?

सुहासिनी—तुम देश को देखते हुए यह भूल जाओगे कि तुम्हारे साथ
तुम्हारी छाया भी अनुगमन कर रही है ।

विष्णुवर्धन—प्रतिबिम्ब का अस्तित्व ही तो बिम्ब की उपस्थिति का
प्रमाण होगा, सुहासिनी !

सुहासिनी—विष्णु !

विष्णुवर्धन—मैं सोचता हूँ...

सुहासिनी—क्या ?

विष्णुवर्धन—समुद्र की उत्ताल उन्मत्त तरंगों की भाँति अपनी भुजाओं
को प्रसारित कर तुम्हें उठालूँ ।

सुहासिनी—मैं मिलन-रागिनी गाने वाली कल्लोलिनी की भाँति तुम्हारी
गोद में मुँह छुपा लूँ ।

विष्णुवर्धन—और मैं युग-युग से प्यासे अघरों से तुम्हें पी जाऊँ ।

सुहासिनी—और मैं संसार के पर्वतों और चौगानों का जीवन लालाकर
पिलाती रहूँ ।

विष्णुवर्धन—किन्तु...

सुहासिनी—किन्तु ?

विष्णुवर्धन—जीवन स्वयं अपनी प्यास नहीं बुझा सकता । वह तो दूसरों
की प्यास बुझाने के लिए है ।

सुहासिनी—तो तुम मेरी प्यास बुझाओ और मैं तुम्हारी ।

विष्णुवर्धन—किंतु, हम जीवन से लबालब दो बादल हैं जो आकाश
में साथ-साथ उड़ रहे हैं । संभव है, हम इतने निकट आ गए हों
कि अब दो नहीं रहे । किसने किसको पी लिया यह ज्ञात ही नहीं
होसका ।

सुहासिनी—अतृप्ति कहती है—नहीं पिया ।

विष्णुवर्धन—तृप्ति ने संसार में अभी जन्म नहीं लिया—इसलिए पीकर अतृप्त रहने से न पीकर अतृप्त रहना अधिक महिमामय है । हमारे जीवन आकाश में घन बनकर छा रहे हैं और पृथ्वी कहती है मैं प्यासी हूँ । हम स्वयं तो अतृप्त ही रहेंगे, किंतु पृथ्वी के जलते हृदय को शांत करने का प्रयत्न करेंगे ।

सुहासिनी—और पृथ्वी के जलते अधरों से वाष्प बनकर फिर आकाश में भटकने लगेंगे ।

[एक बौद्ध भिक्षु सहित वत्स का प्रवेश ।]

वत्स—जनेन्द्र विष्णुवर्धन की जय !

विष्णुवर्धन—वत्स, मेरा उपहास मत करो ।

वत्स—उपहास नहीं करता, मैंने ही नहीं भारत के कोटि कोटि हृदयों ने जनेन्द्र विष्णुवर्धन के कुशल करो को देश की भाग्य-रेखाएँ अंकित करने का कार्य सौंप दिया है । कोटि-कोटि कण्ठों में जनेन्द्र की विजय-कामना के स्वर गूँज रहे हैं—वे यद्यपि आज अन्तर्निहित हैं किंतु किसी भी क्षण आकाश-भेदी गर्जन में प्रकट हो उठेंगे ।

विष्णुवर्धन—जन-मन देश का जयनाद भूलकर व्यक्ति का जयनाद करेगा तो वह दो-चार भगवानों की और सृष्टि भले ही करले किंतु अपने पराभव को पराजित नहीं कर पाएगा । मैं कहता हूँ कि व्यक्तियों के अहं को श्मशान में ले जाकर जीवित ही चिता पर रख दो । संपूर्ण भारतीय जन-समुदाय का अहं देश के सम्मान के महापात्र में ढाल कर एकाकार कर दो । किसी व्यक्ति की कोई व्यक्तिगत आकांक्षा न हो—तभी हम महाविनाश से व्यक्तियों की भी रक्षा कर सकेंगे ।

सुहासिनी—अर्थात् आत्महत्या कर के ही हम जीवन पा सकेंगे ।

वत्स—अच्छी बात है, सुहासिनी देवी, आप पुंड्रपुर के कुशल कारीगरों के करों से निर्मित रेशमी रज्जु, जो सुदृढ़ के साथ सुंदर भी हो,

मंगा लीजिए और अपने कमल-समान कोमल करों से मेरी ग्रीवा में फ़ंदा डालकर मुझे दशपुर के गोपुर के सन्निकट स्थित विशाल वट-वृक्ष की पुष्टतम शाखा पर लटका दीजिए और प्राकार पर मेरे रक्त से लिख दीजिए—“व्यक्ति ने देश की रक्षा के लिए आत्महत्या करली है—यह शव स्वतंत्रता-मंदिर की आधारशिला है ।

विष्णुवर्धन—वत्स, विदूषक बनने का यत्न मत करो । काम की चर्चा होने दो ।

वत्स—काम को भगवान त्रिलोचनने अनंग कर दिया ।

विष्णुवर्धन—तभी तो मन्मथ और भी प्रबल हो गया है । वह कब आकर हृदय को उन्मत्त कर देता है यह ज्ञात ही नहीं होता ।

सुहासिनी—क्या तुम वत्स से दूसरा कुमार-संभव लिखाना चाहते हो ?

वत्स—लिखना तो मैं भी “कुमार-संभव” चाहता हूँ किंतु लिख जाता है “कुमारी-असंभव” । इतिहास में भीष्म और पवन-सुत जैसे चिर कुमारों के उदाहरण मिलते हैं किंतु कुमारियों के नहीं ।

विष्णुवर्धन—हमें अपने प्रयोजन पर आना चाहिए ।

वत्स—प्रवश्य ही ! मैं यह बताना भूल ही गया कि जनेन्द्र के आदेशानुसार मैं बौद्ध भिक्षु महाज्ञान को लाया हूँ ।

[विष्णुवर्धन महाज्ञान को प्रणाम करता है ।]

विष्णुवर्धन—क्षमा करना देव, मेरे वाचाल मित्र ने बातों में उलझाकर आपको प्रणाम करने का भी अवसर नहीं दिया ।

महाज्ञान—मेरे हृदय ने तुम्हारे अंतःकरण के मूक अभिवादन का अनुभव कर निस्वन आशीर्वाद प्रदान कर दिया है, विष्णुवर्धन ।

विष्णुवर्धन—आपके आशीर्वाद का आदर करते हुए यह सेवक आपका क्रियाशील सहयोग चाहता है ।

महाज्ञान—मुझसे क्या चाहते हो ?

विष्णुवर्धन—सुना है बौद्ध भिक्षु बर्बर हूणों की सहायता कर रहे हैं ।

महाज्ञान—ऐसा करना अस्वाभाविक नहीं । जानते हो वैदिक धर्मानुयायी नृपति बौद्धों से क्या व्यवहार करते हैं ? क्या बौद्ध भूल जाएँ कि मगध के शुंग सम्राट पुष्यमित्र ने मगध से जलंधर तक के सारे बौद्ध बिहारों को भस्मसात कर डाला था और उनके श्रमणों को मरवा डाला था । उसने साकल में घोषणा की थी—“जो मुझे एक श्रवण मस्तक देगा उसे मैं सौ दीनार दूँगा ।”

विष्णुवर्धन—मैं सम्राट पुष्यमित्र के इस कठोर कार्य का समर्थन नहीं करता—किंतु आपसे प्रश्न करता हूँ कि जब बौद्ध बिहार शत्रुओं के आश्रय-स्थल और देश की स्वाधीनता के विरुद्ध षड्यंत्र-केन्द्र बन गए थे, जब बौद्ध दिमिति और मिलिंद जैसे विदेशी यवन रक्त-पिपासुओं को भारत पर आक्रमण करने ले आए थे तब पुष्यमित्र देश-द्रोहियों के प्रति कठोर हो गया तो क्या वह अस्वाभाविक था ?

मुहासिनी—और सत्य तो यह है कि पुष्यमित्र बौद्धों का शत्रु नहीं था । बौद्धों के प्रति उसकी सहिष्णुता का ज्वलंत प्रमाण सांची के तोरणद्वार और भट्टंत के बौद्धस्तूप उपस्थित हैं । बौद्धबिहारों को भस्मसात करने वाले पुष्यमित्र की छत्र-छाया में ही तो इनका निर्माण हुआ है ।

वत्स—और भारत में जो बुद्धिमान और शक्तिशाली शासक हुए हैं वे व्यक्तिगत रूप से चाहे किसी भी धर्म के अनुयायी रहे हों किंतु उन्होंने प्रत्येक धर्म को पूर्ण स्वाधीनता और विकास के लिए सुअवसर प्रदान किया है । भागवत चन्द्रगुप्त द्वितीय के संधि-विग्रहक शाव वीरसेन और आस्रकार्दव क्रमशः शंख और बौद्ध थे, परन्तु उनका वैष्णवेतर होना उनके राजकाज और देश के प्रति कर्तव्य-पालन में बाधक तो नहीं हुआ ।

महाज्ञान—किंतु, क्या बौद्ध सम्राटों ने कभी वैदिक धर्मावलंबियों को परायण समझा ? देवानांप्रिय प्रियदर्शी सम्राट अशोक ने आजीविकों, ब्राह्मणों, निग्रन्थों और श्रमणों आदि के प्रति समान उदारता और

आदर का व्यवहार किया था। उन्होंने अपने अभिलेख में लिखा है—“सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं और जिस प्रकार मैं अपने पुत्रों का हित और सुख चाहता हूँ उसी प्रकार मैं प्रजा के ऐहिक और पारलौकिक हित और सुख की कामना करता हूँ।”

विष्णुवर्धन—यही तो मैं भी कहता हूँ, देव ! शासन को किसी एक धर्म को राजधर्म नहीं मानना चाहिए। भारत के शासक प्रत्येक धर्म के विद्वानों को, कलाकारों को पक्षपात-रहित रहकर पूजा-वेतन और देव-पूजा प्रदान करते हैं। कुछ बुद्धिहीन भूपालों के अपवादों को भूल जाना ही श्रेयस्कर है। हमारे किसी पूर्वज ने प्रमाद वश कुछ भूल की है इसका यह अर्थ नहीं कि हम उसे चिरकाल तक स्मरण रखकर अपने राष्ट्रीय जीवन को छिन्न-भिन्न कर दें।

सुहासिनी—देश को पराधीनता के पाश में पड़ने देना तो महा पाप है।

महाज्ञान—इस बात को मैं समझता हूँ।

विष्णुवर्धन—समझते हैं तो आप हमारा साथ दें। भारतवर्ष भर के बौद्ध बिहारों में भ्रमण कर बौद्ध भिक्षुओं को स्वतंत्रता के संदेश-बाहक बनाएँ। विदेशियों से बौद्ध धर्म के कल्याण की कामना मृग-मरीचिका से व्यास बुझाने की आशा करने के समान। वैदिक धर्म परम उदार है उसने शकों जैसे चिरशत्रुओं को भी अपनी वात्सल्यमयी गोद में बैठा लिया, काले गुप्ता के लेख के अक्षर कह रहे हैं कि दो भवनों ने वैदिक धर्म ग्रहण कर सिंहध्वज और धर्म नाम धारण किये। वेसनगर का स्तंभ यूनानी राजदूत हेलियोदोर के भागवत होने का प्रमाण उपस्थित कर रहा है। विदेशी भी भारतीय होकर वैदिक धर्म की स्नेह-छाया में सुख-पूर्वक रह सकते हैं, तब क्या वह बौद्धों को शत्रु समझेगा ? वैदिक धर्म ने भगवान बुद्ध को भी भगवान का अवतार माना है। बौद्ध और वैदिक धर्मावलंबी जननी जन्मभूमि भारत की समान संतान हैं। कोई माँ

का चीरहरण करे तो दोनों पुत्रों को समान दुख होना चाहिए ।

महाज्ञान—निश्चय ही जनेन्द्र ।

विष्णुवर्धन—भारत के शुभदिवस निकट हैं—इसी कारण महाश्रवण ने भारतीय एकता की आवश्यकता को शीघ्र समझ लिया । आज भारत विपत्ति की भँवर में फँस गया है—जिन सम्राटों और भूपालों से जनता रक्षा की आकांक्षा करती है—वे व्यक्तिगत ऐश्वर्य की रक्षा करने के लिए विदेशियों के हाथों अपने देश की स्वाधीनता को बेचने को तत्पर है । हमें जनता-जनार्दन को जाग्रत कर देश के स्वाभिमान की रक्षा करनी है । आइए मैं विस्तार से आपको अपनी योजना से अवगत कराऊँ ।

[सब गुहा-द्वार से एक-एक कर भीतर उतर जाते हैं ।]

[पट-परिवर्तन ।]

तीसरा दृश्य

[स्थान—उज्जयिनी के राज-प्रासाद में मिहिरकुल का शयनागार । समय—रात्रि का प्रथम प्रहर । शयनागार में एक तरफ एक पर्यंक अवस्थित है जिस पर बिछे गद्दे पर रेशमी या मखमली बहुमूल्य चादर नहीं बल्कि एक साधारण किंतु उज्ज्वल धवल वस्त्र बिछा है । वैभवशाली विलासी भद्रजनों के शयनागारों में शोभित होने वाले उद्दीपक चित्र नहीं हैं बल्कि भयानक वन-खंडों में आखेट करते हुए, या युद्ध में पराक्रम दिखाते हुए योद्धाओं के चित्र हैं । दो विशाल सिंहागन टँगे हुए हैं । फर्श पर कालीनों के स्थान पर भी सिंहचर्म बिछे हैं । शीशम की लकड़ी के बने हुए तीन सिंहासन कच्चे कीचों कीच रखे हैं । शयनागार में भी यत्र-तत्र शस्त्रों की भरमार दृष्टि-गोचर होती है । ऐसा जान पड़ता है कि इस

व्यक्ति में कहीं कोमलता का लवलेश भी नहीं है। मिहिरकुल और हूण सेनापति का प्रवेश ।]

मिहिरकुल—मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि हूण-आकांक्षा का पोत भारत के जन-सागर में विलीन हो जाएगा ।

[बान करता-करता मिहिरकुल एक सिंहासन पर बैठता है और सेनापति को बैठने के लिए इंगित करता है ।]

सेनापति—जीवन में प्रथम बार युवराज के कंठ से विचलित स्वर मैंने सुना है । मैं तो समझता हूँ हूण-गर्वा के प्रचण्ड मार्तण्ड को कुछ क्षणों के लिए काली घटाएँ भले ही आच्छादित कर लें—किंतु सदा के लिए उसे तिरोहित नहीं कर सकती ।

मिहिरकुल—घोर ग्रीष्म के रवि की प्रखर किरणों की भांति हूणों के आतंक का यश संपूर्ण विश्व में फैला हुआ है, उसके प्रचंड प्रहार से मानवता त्राहि-त्राहि कर उठी है, भारत के भूपाल भी तोरमाण और मिहिरकुल को प्रलय-दूत समझते हैं, फिर भी मेरे मन में एक खटका-सा बना रहता है । जान पड़ता है कि एरण भारत में हूण सत्ता के विस्तार की अंतिम सीमा-रेखा है । हूण-गौरव के उत्कर्ष का उच्चतम बिंदु है ।

सेनापति—ऐसा सोचना व्यर्थ है युवराज ! हूण-योद्धा अलक्षेन्द्र के सैनिक नहीं हैं जिनके उत्साहका ज्वार शत्रु-यश को सुनकर ही उतर जाए । मेरे विचार में तो अब मगध के गुप्त साम्राज्य को एक ही झटका और लगाने की आवश्यकता है ।

मिहिरकुल—सेनापति, मगध-सम्राट अथवा उसकी सेना मेरी चिंता का विषय नहीं है । मैं विस्मित हूँ तो भारतीय जन-साधारणके साहससे । एरण में जलने वाली ज्वाला तुमने भी देखी है, सेनापति । उस समयतो मैं एरण के नागरिकों का उनके ही भवनों की ज्वाला-लपटों में फँक कर पैशाचिक हँसी हँसा था किंतु अब उस समय की अपनी

तुच्छता की छाया से भी मैं काँप उठता हूँ—मुझे—ऐसा जान पड़ता है जैसे इस देश का प्रत्येक रजकण उपहासभरे स्वर में कह रहा है—“हूणों को मैं इस देश का राजा नहीं मानता ।”

सेनापति—किंतु युवराज, आपने तो कहा था कि मैं भारत की कठोर छाती को अपनी विश्वविजयी असि की नोंक से चीरकर इस भूमि के कण-कण पर, रक्त के अक्षरों में लिख दूंगा—हूण भारत के सम्राट हैं । रवि-शशि और तारकगण नयन विस्फारित करके देखेंगे कि साधारण हूण सैनिक के आदेश पर भारत के भूपालों के चिरकाल से गर्वोन्नत मस्तक नत होंगे ।

मिहिरकुल—हाँ, मैंने कहा था और जो कहा था वही करना भी चाहता हूँ । एक क्षण का विश्राम भी मुझे असह्य है। लक्ष्य-लाभ जितना ही दुस्साध्य दृष्टिगोचर होता है मेरा आग्रह भी उतना ही दुर्दमनीय होता जा रहा है । जब हूण अपनी जन्मभूमि से निकल पड़े हैं तो वे पृथ्वीके ओर छोर नापना चाहेंगे—बाधाएँ आएँगी—उनसे टकराएँगे—चट्टानों को चूर-चूर करेंगे—या स्वयं ही अपनी आकांक्षाओं से टकराकर चकनाचूर हो जाएँगे ।

[धन्यविष्णु का प्रवेश और नमस्कार करना ।]

धन्यविष्णु—हूण-कुल-दिवाकर युवराज मिहिरकुल को धन्यविष्णु, नमस्कार करता है ।

मिहिरकुल—आओ, मालवमहेश !

[मिहिरकुल धन्यविष्णु को आसन ग्रहण करने का इंगित करता है । धन्यविष्णु बैठता है ।]

सेनापति—मगध से सकुशल आगए ?

धन्यविष्णु—आगया, क्योंकि मैं वहाँ गुप्त सम्राट के एक सामंत शासक, अथवा विद्रोही गोप्ता के रूप में उपस्थित नहीं हुआ था, अपितु विश्वविजयी हूण-सम्राट के राजदूत की स्थिति में पहुँचा था ।

मिहिरकुल—उज्जयिनी में कब आए ?

धन्यविष्णु—प्राने के पश्चात् प्रथम कार्य युवराज के दर्शन करने का किया है ।

मिहिरकुल—ठीक, मुझमें मिले बिना नींद भी तो नहीं आती आपको । मैं सोचता हूँ यदि सभी धन्यविष्णु होते तो भारतभूमि पर रक्त का ज्वार क्यों आता ?

धन्यविष्णु—मगध-सम्राट भी धन्यविष्णु बनने को प्रस्तुत है ।

मिहिरकुल—तात्पर्य ?

धन्यविष्णु—मगध युद्ध नहीं संधि का इच्छुक है ।

सेनापति—संधि ?

मिहिरकुल—मगध के इतिहास में इस प्रकार शत्रु से संधि का प्रस्ताव नई बात है ।

धन्यविष्णु—कलिंग और मगध का चिर पुरातन विवाद फिर तीव्रतर हो उठा है । मगध विश्व-विजयी हूण और कलिंग के परम पराक्रमी अदम्य खारवेल दोनों से एक साथ संघर्ष नहीं कर सकता ।

सेनापति—तब तो हमें तुरन्त ही मगध पर आक्रमण कर देना चाहिए ।

मिहिरकुल—मैं तो एरण के युद्ध के पश्चात् ही तुरन्त तीर की तरह पाटलिपुत्र की तरफ प्रयाण करना चाहता था किन्तु सम्राट ने अग्रसर होने से रोक लिया ।

सेनापति—अपनी स्थिति दृढ़ किए बिना आगे बढ़ना उन्हें उचित नहीं जान पड़ा । उनका शांत चित्त से सोचा हुआ निश्चय आज तक कभी अहितकर सिद्ध नहीं हुआ । कदाचित् उन्होंने समझा कि यदि हूण-सेना का अधिक भाग मालवप्रदेश के बाहर चला गया तो यहाँ विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित हो उठेगी ।

मिहिरकुल—और मैं समझता हूँ पिताश्री की शंका सर्वथा निर्मूल भी नहीं है ।

धन्यविष्णु—ऐसा सोचने का कारण ?

मिहिरकुल—कारण पूछते हो ? आश्चर्य, आप अपनी ही प्रकृति से अपरिचित हैं !

धन्यविष्णु—युवराज ?

मिहिरकुल—सच कहो क्या आप मिहिरकुल का मस्तक नहीं काटना चाहते ?

धन्यविष्णु—(विस्मित और आशंकित होकर) नहीं तो ।

मिहिरकुल—तब मुझे कहना पड़ेगा आप मालव नहीं हैं । आज प्रत्येक मालव मिहिरकुल का मस्तक मांगता है ।

धन्यविष्णु—आप परिहास कर रहे हैं ।

मिहिरकुल—परिहास कर रहा हूँ ? धन्यविष्णु शासक की आँखें उसके गुप्तचर होते हैं । राजभवन की प्राचीरों से घिरा रहकर भी मिहिरकुल को सब ज्ञात हो जाता है ।

धन्यविष्णु—आपको क्या ज्ञात हुआ है ?

मिहिरकुल—जो आपको होना चाहिए था । आजकल मालव प्रदेश में स्थान-स्थान पर अभिनीत नाटकोंको देखा है आपने ? देखते तो जानते कि किस तरह विदेशी सत्ता के प्रति घृणा और विद्रोह के भाव जन-मन में भरे जा रहे हैं । आश्चर्य है आप राजा होकर भी नहीं जानते—या परोक्षरूप से आप ऐसा करा रहे हैं ।

[एक द्वारपाल का प्रवेश और नमनपूर्वक अभिवादन करना ।]

द्वारपाल—एक दर्शनाभिलाषी युवक द्वार पर प्रतीक्षा कर रहा है । उसने यह संकेत प्रेषित किया है ।

[युवराज को एक मुद्रिका देता है ।]

मिहिरकुल—उसे उपस्थित करो ।

[द्वारपाल का प्रस्थान । नेपथ्य से वाद्यों का स्वर सुनाई देता है । कुछ क्षण पश्चात् गीत सुनाई देता है ।]

नेपथ्य में गीत—

चन्द्र मुसकुराया, मुसकाओ
मेरे मन के मीत ।
अरे हुआ क्या जग को जीता,
रहा हृदय का घट तो रीता ।
जो न रूप की मदिरा पीता
उसका जीवन मृतवत बीता ।
हारी उसकी जीत ।

चन्द्र मुसकुराया, मुसकाओ

मेरे मन के मीत ।

[गीत मिहिरकुल को धेचैन कर देता है । वह उठकर कक्ष में घूमने लगता है । शो ! दोनों व्यक्ति भी खड़े हो जाते हैं और मिहिरकुल की विकलता को साश्चर्य देखते हैं । गीत का पहला अन्तरा समाप्त होने पर वाद्य कुछ अधिक स्पष्ट हो जाते हैं और नृत्य में बजने वाले घुँघरुओं का स्वर सुनाई देता है ।]

मिहिरकुल—यह मधुर स्वर हूण राजमहल के अंतःपुरमें ! मानों सर्प को पेटिका में बंदी करने के लिए जादूगरनी महुप्रर वजा रही है ।

[नेपथ्य में गीत का दूसरा अन्तरा प्रारम्भ होता है ।]

नेपथ्य में गीत—

छवि ने यौवन-घट छलकाया,
तू क्यों पीने में शरमाया,
कल्लि का का आमंत्रण आया,
तो अलि रस लेने अकुलाया ।

रोके रुकी न प्रीत ।

चंद्र मुसकुराया, मुसकाओ

मेरे मन के मीत ।

धन्यविष्णु—स्वर तो कंचनी का है ।

सेनापति—कंचनी !

मिहिरकुल—कंचनी, जिसका गीत एरण में अपूर्ण रह गया था और मैंने जिसकी आँखों में चोट खाई हुई सर्पिणी की आँखों की सी चमक देखी थी ।

सेनापति—संभवतः सम्राट की सेवा में कंचनी मालवपति द्वारा ही प्रेषित की गई है ।

मिहिरकुल—धन्यविष्णु, आप पिताश्री की हत्या का षड्यंत्र रच रहे हैं ।

धन्यविष्णु—(चौंककर) हत्या ?

मिहिरकुल—वृद्धावस्था में युवती का सामीप्य—कंचनी जैसी मालव-प्रदेश की अफ्रीम से भी अधिक नशीली सुंदरी—यह मृत्यु का आलिगन नहीं तो क्या है ? मालव शस्त्र हूणों से विजय न पा सके तो इस नाग-पाश का प्रयोग किया है ।

धन्यविष्णु—विश्वास कीजिए कंचनी को सम्राट के कक्ष में मैंने नहीं भेजा ।

सेनापति—तो वह स्वयं प्रयत्न करके पहुँची है—यह तो और भी भयंकर बात है ।

मिहिरकुल—भारत में फिर चंद्रगुप्त और चाणक्य ने जन्म लिया है, और इस बार मालवप्रदेश में । उनका प्रथम शर धनुष से छूट चुका है और कदाचित् सम्राट के वक्षस्थल में प्रवेश कर गया है ।

धन्यविष्णु—मैं कंचनी का मस्तक युवराज के चरणों में समर्पित करूँगा ।

मिहिरकुल—मिहिरकुल के क्रोध की प्यास एक नर्तकी के रक्त से नहीं बुझेगी । संभवतः उसे धन्यविष्णु के हृदय का तप्त रक्त चाहिए ।

धन्यविष्णु—(मस्तक मुकाकर) देवता ! शीशफूल चरणों में चढ़ने

को प्रस्तुत है । शरीरवृत्त से इस पुष्प को आप असि-हस्त से तोड़ लीजिए ।

मिहिरकुल—मिहिरकुल ने असंख्य शीशफूल अपने पैरों से रौंदे हैं, किंतु धन्यविष्णु की मस्तक-मणि का वह मान करना चाहता है । मुझे आपका मस्तक नहीं उसमें बसने वाली समझदारी चाहिए । आप हूणों के होकर रहोगे तो इस समय न आपके मस्तक की आवश्यकता पड़ेगी न कंचनी के मस्तक की । मुझे शर नहीं शर-संचालक चाहिए ; जिसके आदेश से कंचनी हूण-सम्राट के कक्ष में पहुँची है मुझे उसका मस्तक चाहिए ।

[गुप्तचर का प्रवेश और नमनपूर्वक अभिवादन करना ।]

मिहिरकुल—(धन्यविष्णु से) अच्छा मालवनरेश, आप सम्मानपूर्वक कंचनी को उसके भवन में पहुँचा दीजिए और उसकी गतिविधि का निरीक्षण कीजिए । आप मेरे दक्षिण हस्त हैं—याद रखिए मुझे अपने ही हाथ को काटकर न फेंक देना पड़े ।

धन्यविष्णु—नहीं युवराज, आपका सेवक अंतिम क्षण तक आपका सिरस्त्राण बनकर रहेगा ।

मिहिरकुल—मैं जानता हूँ—आपने मेरे साथ आकर पाप-पथ पर पैर रखा है, किंतु अब पुण्य के पथ पर अग्रसर होने का अवसर मैं नहीं दूँगा । हूणों के मित्र रहकर इस लोक में वैभव, विश्वास और प्रभुता भोग सकते हो—परलोक सुधारने की इच्छा करोगे तो हूणों से विश्वासघात करने का दंड की कल्पना आप कर सकते हो । अच्छा, आप जा सकते हैं ।

[धन्यविष्णु चिंतित और हृत्प्रभ-सा प्रस्थान करता है ।]

मिहिरकुल—(गुप्तचर से) अब बोलो ।

गुप्तचर—युवराज, समाचार विस्मयोत्पादक हैं । जल-मार्ग से हमारे

जो शस्त्रास्त्र आ रहे थे वे अज्ञात जल-दस्युओं द्वारा भर कच्छ के पत्तन पर लूट लिए गए ।

मिहिरकुल—क्या हमारे सैनिक नशे में थे ?

गुप्तचर—नहीं युवराज, उन्होंने अन्तिम क्षण तक युद्ध किया—किंतु अप्रत्याशित आक्रमण को संभाल न सके । न जाने कहां से सहस्रों छोटी छोटी नौकाओं पर शस्त्रों से सुसज्जित दस्यु आ गए और पोत पर अधिकार कर लिया ।

सेनापति—हमारे शस्त्रों का शत्रुओं के हाथ लग जाना अच्छा नहीं हुआ ।

गुप्तचर—और स्थल मार्ग से शस्त्रास्त्र लाने वाले हमारे दल को भी दस्युओं ने सौराष्ट्र में सुदर्शन हृद के निकट लूट लिया ।

मिहिरकुल—सुना सेनापति हम एक जलते हुए वनखंड के बीच खड़े हैं । सहस्रों कोस तक हमारे लिए एक भी जल बिंदु नहीं है । आकाश में भी मेघ की एक भी टुकड़ी नहीं है ।

सेनापति—किन्तु हुए सैनिकों का साहस...

मिहिरकुल—श्रीण नहीं हुआ है—न मिहिरकुल का—किन्तु हमें यह भी तो नहीं भूलना चाहिए कि हम सुविस्तृत भारत के हृद्देश मालव प्रदेश में बैठे हैं । हमारी मूलशक्ति से हमारा संबंध-विच्छेद हो गया है । हुए सैनिकों का साहस और हमारे किए हुए अत्याचारों का भ्रातृक ही अब हमारी पूँजी है और भारतीय नृपतियों का पारस्परिक संघर्ष ही हमारा संरक्षण है ।

सेनापति—मैं समझता हूँ अब हमें तुरन्त ही मगध सम्राट से संधि करके उन्हें मित्र बना लेना चाहिए ।

मिहिरकुल—हां, कुछ समय के लिए । हमें ज्ञात करना है कि वे कौनसी शक्तियाँ हैं जिन्होंने हमें चुनौती दी है । हो सकता है यह कोई बड़ा संकट न भी हो—और हो सकता है कि नन्हीं सी चिनगारी महानाश की ज्वाला बन जाए । यह सहज शांत भारत है जिसके

हृदयस्थल से किसी भी क्षण संसार के गर्व को भस्म करने वाली लपटें उठ पड़ती हैं । भारत को अशक्त समझकर हम उससे नहीं जूझे, बलवान समझकर ही जूझे हैं, ताकि युद्ध का वास्तविक आनन्द प्राप्त हो ।

[एक घबराई हुई परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका—युवराज सम्राट बेसुध हो गए हैं ।

मिहिरकुल—बेसुध ! कंचनी कहाँ है ?

परिचारिका—वह तो पहले ही जा चुकी है ।

सेनापति—धन्यविष्णु के साथ ?

परिचारिका—नहीं, वह उनके आगमन के पूर्व ही अपने वाद्यकारों सहित चली गई थी ।

धन्यविष्णु—सेनापति, कंचनी और धन्यविष्णु पर निगाह रखो—वे उज्जयिनी के बाहर न जाने पाएँ । कोई और समय होता तो मैं इनकी बोटी बोटी करके ध्वानों के आगे फेंक देता—लेकिन ऐसा करने से षडयन्त्र का सूत्र नहीं मिलेगा । (गुप्तचर से) जाओ गुप्तचर । तुम्हें कर्तव्य समझाना न होगा । हमारे आस-पास, ऊपर नीचे दशों दिशाओं में विषधर रेंग रहे हैं । सेनापति आप अपने कार्य पर जाइए—मैं पिताजी की चिकित्सा का प्रबन्ध करता हूँ ।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[स्थान:—वन-प्रदेश में एक मैदान । समय-प्रभात । शाल की एक ऊँची बल्ली भूमि में गड़ी हुई है जिसके शीर्ष पर एक मत्स्य टँगा हुआ है । बल्ली के तल-प्रदेश में एक बड़े और चौड़े पात्र में तेल भरा हुआ है जिसमें मत्स्य का प्रति-

विम्ब दृष्टिगोचर होता है । बल्ली इतनी ऊँची है कि उसके शीर्ष पर बँधे मत्स्य को दर्शक नहीं देख सकते । मंदाकिनी और विष्णुवर्धन का प्रवेश । दोनों धनुष-बाण लिए हुए हैं ।]

विष्णुवर्धन—यह क्या द्रौपदी-स्वयंवर का आयोजन किया है ?

मंदाकिनी—नहीं, आज मैं आचार्य द्रोणाचार्य की भाँति अपनी शिष्याओं की परीक्षा ले रही हूँ कि वे लक्ष्यबेध में कितनी पारंगत हुई हैं ।

विष्णुवर्धन—संभवतः स्नेह में मत्स्य-प्रतिविम्ब देखकर लक्ष्य-साधन करना होगा ।

मंदाकिनी—मैं सिद्ध करना चाहती हूँ कि जिस कौशल के लिए गांडीव-धारी अर्जुन को द्रौपदी जैसी अनिद्य सुंदरी पुरस्कार में प्रदान की गई थी वह आज की नारियों के लिए साधारण-सी बात है ।

विष्णुवर्धन—हाँ, लक्ष्य-बेध में पुरुष की अपेक्षा नारी सहज ही अधिक सफल होती है ।

मंदाकिनी—वाह भैया ! लोग समझते हैं जनेन्द्र विष्णुवर्धन शुष्क, कठोर प्रस्तर-खंड है किन्तु मैं देखती हूँ ज्यों-ज्यों संग्राम-महायज्ञ का प्रारंभ निकट आ रहा है त्यों-त्यों इस प्रस्तर-खंड से रस-स्रोत प्रवाहित होने को अधिकाधिक व्याकुल होता जा रहा है । संभवतः सुहासिनी का शर अचूक बैठा है ।

विष्णुवर्धन—हाँ, बहन ! किन्तु सैनिक के हृदयपर अचूक लक्ष्य-बेध करना ही तो बहुत बड़ी चूक है । सैनिक रूपी पक्षी ऐसा निर्लज्ज होता है कि वह शर-बिद्ध होकर भी गगन-विहारी बना रहता है । न उसे अपने हृदय से वाण को बाहर निकाल फेंकने का अवकाश है—न अपने बधिक की भोली में आ बैठने का और न मृत्यु का आलिङ्गन करने का ।

मंदाकिनी—पक्षी ज्यों-ज्यों आकाश में अधिक दूर उड़ता है बधिक का उसे प्राप्त करने का निश्चय भी अधिक दृढ़ होता जाता है । वह भी

उन्मत्त होकर शर-संधान करता है ।

विष्णुवर्धन—किंतु, मुझे विश्वास है कि मेरा बधिक इस तुच्छ प्राणी का मोह छोड़कर देश के शत्रुओं की ओर ध्यान देगा ।

मंदाकिनी—ऐसा तो वह तभी कर सकता है जब उसे विश्वास हो जाए कि उसका पंछी उसके प्रीत-पींजरे में अपना स्वर्ग बसा चुका है ।

विष्णुवर्धन—किंतु, बहिन क्या पींजरे में, चाहे वह स्वर्ग का है चाहे प्रीत के अदृश्य तंतुओं का, कभी स्वर्ग बस सकता है । मानलो आज संभूत भारत हूण-सत्ता के विराट पींजरे में बंदी हो जाए तो क्या कोई भारतवासी पराधीनता के पींजरे को स्वर्ग समझ सकेगा ।

मंदाकिनी—और भैया यदि हूण भारतीय बन जाएं ?

विष्णुवर्धन—तब उसके हृदय में भारतीयों पर प्रभुता स्थापित करने की आकांक्षा भी समाप्त हो जाएगी । उस दिन स्वाधीनता का प्रश्न समाप्त हो जाएगा । जिस मिट्टी से हमारा तन बना है उसी मिट्टी को जब तक वे अपनी माँ नहीं मानेंगे तब तक हमारी उनसे संधि नहीं हो सकती ।

मंदाकिनी—किंतु भैया, कुषाण सम्राट् वाभेष्क पुत्र महाराज राजातिराज देवपुत्र कंसर कनिष्क भी तो विदेशी ही थे । उनके मान को रखने के लिए भारतीय योद्धाओं ने चीन की भूमि में अपना रक्त बर्षा सींचा था ?

विष्णुवर्धन—क्योंकि कुषाण भारतीय संस्कृति के प्रभाव से भारतीय बन गए थे—अभिन्न होगए थे । उन्होंने जिन हाथों से भारतीयों के विरुद्ध शस्त्र उठाए थे उन्हीं हाथों से भारतीय आचार्यों के चरण छूकर अपने प्रभुता के मद को विसर्जित कर दिया था ।

[वत्स का कंचनी का हाथ पकड़े हुए प्रवेश ।

कंचनी उन्हीं बहुमूल्य वस्त्राभूषणों में है जिन्हें

वह तोरमाण के कक्ष में धारण कर उसका मनोरंजन कर रही थी । वत्स भी कंचनी के

वाद्यकार के देश में है । वस्स का कंचनी का
हाथ पकड़े हुए आना मंदाकिनी को अखरता है ।
उसकी थोरियाँ चढ़ती हैं ।]

मंदाकिनी—कवि-सम्राट वस्स भट्ट ! नर्तकी के वाद्यकार के रूप में !
बधाई है इस उत्कर्ष के लिए ।

वस्स—बधाई देती हो या ईर्ष्या करती हो ।

मंदाकिनी—मैं प्रसन्न होकर बधाई देती हूँ ।

कंचनी—क्षमा करना देवि, नयनों की बिजली प्रसन्नता का संकेत नहीं
देती ।

मंदाकिनी—किंतु मेरी आँखों में नर्तकी से प्रतिस्पर्धा करनेवाली ज्वाला
भी नहीं है ।

कंचनी—नर्तकी किसी भद्र महिला से प्रतिस्पर्धा करने का सम्मान भी
नहीं पा सकती ।

मंदाकिनी—क्योंकि वह अनायास ही भद्र महिलाओं के सुख-स्वर्गों में
आग लगाने की क्षमता रखती है ।

त्रिःशुवर्धन—बहन, तुम अतिथि पर बरस क्यों पड़ी हो ?

मंदाकिनी—क्यों भैया, हूण भी तो भारत में अतिथि ही हैं—अनाहूत,
अनाचारी । और इस नर्तकी रूपी अनाहूत, अनाचारी, निर्दय
अतिथि ने भी अप्रत्याशित आक्रमण किया है ।

वस्स—डरो नहीं, मंदाकिनी, आक्रमणकारी संधि करना चाहता है ।

मंदाकिनी—और तुम इस आक्रमणकारी अतिथि के राजदूत हो ?

त्रिःशुवर्धन—(वस्स से) कौन है यह ?

वस्स—कंचनी !

मंदाकिनी—यह तो उसकी साज-सज्जा पुकार-पुकार कर कह रही है ।

वस्स—किंतु । अब कंचनी तुम्हारी सेना की सैनिका बन गई है ।

मंदाकिनी—सैनिका ! शस्त्र-संचालन जानती है ?

वस्स—संभवतः आचार्य के समान ही ।

मंदाकिनी—तो वह प्रतिबिम्ब में देखकर मत्स्य का लक्ष्य-वेध कर परीक्षा दे ।

कंचनी—उत्तीर्ण होने पर पुरस्कार भी मिलेगा या हाथ में धनुष-बाण देकर रणभूमि में प्राण देने की आज्ञा मिलेगी ?

मंदाकिनी—पुरस्कार भी पाओगी ।

कंचनी—क्या ?

मंदाकिनी—जो तुम्हारे हृदय को प्यारा है ।

कंचनी—जो तुम्हारी आँखों का तारा है ।

मंदाकिनी—(अपने हाथ का बाण कंचनी की तरफ बढ़ाकर) लो, बाण की नोक से मेरी आँखों के तारे को निकाल लो, अंधी कर दो मुझे । मेरे जीवन की ज्योति छीन लो । बेध डालो मेरे हृदय को । लूट लो मुझे । बरबर हूणों की भाँति अपने यौवन के उद्धत अश्व पर आसीन होकर आओ—रोंध डालो मेरी लाँछित काया को—घौर चली जाओ अपने हृदय-देवता के हृदय-मन्दिर में नृत्य करने ।

[मंदाकिनी का मुख उत्तेजना से रक्त-वर्ण हो उठता है । उसकी आँखों में, रोकने का प्रयत्न करने पर भी, एक दो बूँदे जल की छलक आती हैं]

विष्णुवर्धन—मंदाकिनी, तुम मेरी बहन हो । तुमको...

मंदाकिनी—भैया, तुमने माताजी की चिता की आकाश चुंबी लपटें देखी थीं—उनसे भी कहीं अधिक भयंकर लपटें मेरे हृदय में जल रही हैं ।

वत्स—मंदाकिनी !

मंदाकिनी—तुमने दुर्मंद गज की भाँति मेरी आशा-लता को जड़ से उखाड़ डाला है ।

वत्स—किन्तु, मैं तो तुमसे परिहास करने के लिए कंचनी का हाथ

पकड़े हुए यहाँ आया था ।

कंचनी—परिहास करने के लिए । भद्र युवक तुमने कंचनी के जीवन के साथ खेल किया है । प्रेम का अभिनय करना रूप-जीवा की साधारण जीवन-चर्या है किंतु अपनी धन-वैभव-सुख-साधन-सम्पन्न अट्टालिका को छोड़कर अपने हाथ मेहदी के स्थान पर रक्त से रँगकर जब मैं अज्ञान पथ पर नक्षत्रों की उपहास करती हुई दृष्टि की उपेक्षा करके तुम्हारा हाथ पकड़कर चली आई—तब मैंने परिहास नहीं किया था । जीवन में पहली बार मैंने वास्तविक प्यार को तुम्हारी आँखों में चमकते हुए देखा था—और अपने हृदय में उमड़ते हुए अनुभव किया था । यह सब परिहास था तो मेरा जीवन भी परिहास है—मैं जहाँ से आई हूँ—वहीं चली जाऊँगी ।

[जाने लगती है किन्तु वत्स मार्ग रोक लेता है]

वत्स—निर्दय न बनो अपने प्रति, मेरे प्रति, और अपने देश के प्रति । तुम सौंदर्य में उर्वशी को लज्जित करने वाली हो—और मेरी आँखों के छवि-मधु-लोभी अमरों ने तुम्हारे सौंदर्य के आकर्षण का अनुभव न किया हो ऐसी भी बात नहीं है, लेकिन, कंचनी, मैंने तुम्हारे कंठ में—तुम्हारे चरणों की गति में, भारती के दर्शनकर उसके चरणों में अपने हृदय का पुष्प अर्पित किया है । तुम अपने स्थान से स्वलित न हो, देवि !

विष्णुवर्धन—(मंदाकिनी से) सुनती हो बहन, यह है मेरे मित्र वत्स का रूप । मैं ने तुम दोनों को चिरसंगी बनाने की इच्छा कुछ सोच समझकर ही प्रकट की थी ।

मंदाकिनी—क्षमा करो, भैया ! मैं नारी-सुलभ दुर्बलता...

विष्णुवर्धन—(बात काटकर) दुर्बलता लज्जा की वस्तु नहीं है, बहन ! दुर्बल मैं भी हूँ—दुर्बल वत्स भी है—दुर्बल तुम भी हो—

दुर्बल कंचनी भी हं। हम किसी में देवत्व की खोज करेंगे तो हमारे हाथ दुख और निराशा ही लगेगी। हम मनुष्य को प्यार करेंगे तो हमें उसकी दुर्बलता को भी प्यार करना पड़ेगा। सुहासिनी मेरी दुर्बलता है, वत्स तुम्हारी, कंचनी वत्स की और हम सबकी दुर्बलताएँ ही हमारा बल हैं। गंगा-यमुना के पथ बदले जा सकते हैं किन्तु क्या प्रीत-सरिता का मार्ग अवरुद्ध किया जा सकता है।

कंचनी—किन्तु, बह सरस्वती की भाँति अंतःसलिला तो हो ही सकती है। मेरा प्रेम अंतःसलिला बनकर मेरे ही प्राणों में प्रवाहित होगा। वत्स मेरी दुर्बलता है—उसकी उपस्थिति अंतःसलिला में उद्रेक न ले आए इसलिए मैं चली ही जाऊँगी।

वत्स—चली ही जाओगी—कहाँ उज्जयिनी, किन्तु जानती हो वहाँ तोरमाण का अंत बुलाने वाली कंचनी का कैसा स्वागत होगा।

त्रिष्णुवर्धन—क्या तोरमाण की मृत्यु हो गई ?

वत्स—हाँ, इसीलिए तो मुझे कंचनी का वाद्यकार बनना पड़ा था—किन्तु यह अभिनय मंदाकिनी को इतनी पीड़ा पहुँचाएगा इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी।

त्रिष्णुवर्धन—कंचनी, तुम न वास्तव में पुरस्कार पाने योग्य कार्य किया है।

मंदाकिनी—तो दे डालो अपनी सबसे प्रिय वस्तु—अपने मित्र को—इस परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थिनी को। रण-भेरी के स्थान पर यहाँ, शहनाई बजने दो।

त्रिष्णुवर्धन—जब तक मेरे प्राणों में रणभेरी बज रही है—मेरे साथियों को भी शहनाई के स्वर सुनने से वंचित रहना पड़ेगा। तुमने महाभारत में पढ़ा है कि आचार्य द्रोण ने मत्स्य के नेत्र का लक्ष्यबेध करते हुए अर्जुन से जब पूछा कि तुम्हें क्या क्या दिखाई देता है, तब उन्होंने कहा था—मुझे केवल मत्स्य की आँख दिखाई

देती है । हम इधर उधर न भटक अपने लक्ष्य की ओर देखेंगे ।

कंचनी—धन्य हो जनेन्द्र ! आपकी जिननी प्रतंसा वत्स ने की थी उससे कहीं महान है आप । सूर्य की किरणें आपकी चितवन से लज्जित हैं—समुद्र का गर्जन आपकी वाणी के सम्मुख सकुचा रहा है । तथा गत भगवान ने वैशालीकी वेश्या आम्रपालि का उद्धार किया था—आपने उन्हीं की भाँति उज्जयिनी की कंचनी को कंचन बना दिया ।

विष्णुवर्धन—मुझे लज्जित न करो, कंचनी । मनुष्य के हृदय में देवता भी हैं—और राक्षस भी—इसीलिए तो वह मनुष्य है । कोई व्यक्ति किसी कारण, प्रलोभन या परिस्थिति के वश पतन के पथ पर चला गया तो क्या वह सदा के लिए सुपथ पर सम्मान पूर्वक आने का अधिकार खो बैठा है । जिस दिन हमारा समाज इतना अनुदार हो जायगा उसी दिन समझ लो उसमें विनाश के कीटाणु जन्म ले लेंगे ।

वत्स—बंधु ! मैं भी नहीं समझ सका था कि तुम इतने उदार हो ।

विष्णुवर्धन—उदारता ही तो भारतीय संस्कृति का बल है—जिसने यवन, शक, कुषाण सबको अपने अंचल के नीचे ले लिया । एक दिन हूण भी दुर्गग्रह छोड़कर वही करेंगे जो उनसे पहले आने वाले विदेशी कर चुके ह । जब तक उनमें इतनी सद्बुद्धि नहीं आती, हमें जननी जन्मभूमि का सम्मान रखने के लिए शस्त्रों का सहारा लेना ही पड़ेगा । आज तुम बहुत दिनों बाद आए हो—तुम्हें बहुत कुछ बताना है—मेरे साथ आओ—तुम भी मंदाकिनी, तुम्हारी शिष्याओं के आने में अभी विलम्ब है । तुम भी कंचनी ।

[सब का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[समय—रात्रि के द्वितीय प्रहर का प्रारंभ । स्थान—
उज्जयिनी की एक प्रसिद्ध मधुशाला के बाहर की सीढ़ियाँ ।
जयदेव और धर्मदास मद्यपों की भाँति अस्थिर ढगमग पग
रखते हुए आते हैं ।]

जयदेव—(लड़खड़ाते से स्वर में) मधुशाला का स्वामी कहता है
तुमको हारहनूज सुरा नहीं देंगे । नहीं देंगे ! क्यों नहीं देंगे ? नहीं
देना है तो किसी को न दें । उस हूण सैनिक के पात्र में मधुबाला
ने मेरे सामने हारहनूज ढाल कर दी । मैं उस हूण का मस्तक
तोड़ दूँगा ।

[कुछ पंथी एकत्रित हो जाते हैं ।]

धर्मदास—(जयदेव की भाँति लड़खड़ाते हुए स्वर में ही) उसका
मस्तक तो मैं भी तोड़ना चाहता था किंतु मैंने सोचा—उसके घर
में पत्नी होगी—वह युवक है—अतः उसकी पत्नी भी युवती होगी—
सुहाग लुट जाएगा । युवती स्त्री की माँग में सिद्धूर न हो तो उसमें
और श्रीफल में अंतर ही क्या रह जाए ?

जयदेव—वाह, वाह, युवती के मस्तक की उपमा श्रीफल से देकर तुमने
तो कालिदास की नगरी में कालिदास को ही प्रभाहीन कर दिया ।
किंतु.....

[सीढ़ियों पर बैठ जाता है ।]

धर्मदास—किंतु क्या ?

जयदेव—श्रीफल की खोपड़ी फोड़ने से तो सुस्वादु खाद्य-प्रदाय की
उपलब्धि होती है, किंतु नारी की खोपड़ी फोड़ने से क्या मिलेगा ?

धर्मदास—(जयदेव के पास बैठकर) जियो भैया, जियो । क्या जिज्ञासा
है ! किसी शास्त्र में इसका समाधान नहीं मिलेगा । स्वयं ही
अन्वेषण करना होगा । हः हः हः नारी की खोपड़ी ?

जयदेव—हःहः नारी की खोपड़ी, क्या वह ऐसी पिटारी है जिसे खोल कर देखा ही नहीं जा सकता । अजी महाराज, हाथ कंगन तो आरमी की क्या आवश्यकता । शास्त्रों में नारी की खोपड़ी के संबंध में अध्ययन करें मूर्ख लोग; हम तो उसकी खोपड़ी को फोड़-कर ही देखेंगे ।

[जयदेव उठकर मधुशाला में घुमने लगता है किंतु धर्मदास पकड़ लेता है । कुछ और व्यक्ति जमा हो जाते हैं ।]

धर्मदास—किस नारी की खोपड़ी फोड़ोगे ?

जयदेव—मधुबाला की; जो भाँति-भाँति की मदिराओं की सुगंधों से, और मद्यों की भाँति-भाँति की नशीली भावनाओं से भरपूर है ।

धर्मदास—मित्र, मधुबाला की खोपड़ी भाँति-भाँति की मदिराओं की गंध से परिपूर्ण है तो खोपड़ी के रक्त में भी मदिरा से अधिक नशा होगा ।

जयदेव—अर्थात् मधुबाला मदिरामयी सुरात्री है ।

एकदर्शक—(दूसरे दर्शक से) और ये दोनों मदिरा के कुप्पे ह । अभी नाली में लुढ़कते दृष्टिगोचर होंगे ।

जयदेव—क्या कहा ? (दर्शक के मुँह पर पूरे बल से थप्पड़ जड़ता हुआ) मूर्ख, मद्यप !

[पहला दर्शक गाल टटोलता हुआ सक्रोध देखता है, एक दूसरा दर्शक जयदेव को पकड़ता है, किंतु धर्मदास एक झटके से दूसरे दर्शक को जयदेव से प्रथक करता है ।]

धर्मदास—क्यों भाई, इससे क्यों उलझते हो ?

दूसरा दर्शक—इसने इस पर हाथ क्यों उठाया ?

धर्मदास—इसने हाथ नहीं उठाया । न मानो तो जिसके थप्पड़ लगा है उसी से पूछो ।

दूसरा दर्शक—उससे क्या पूछें, हमने अपनी आँखों से देखा है ।

धर्मदास—क्या देखा है ?

दूसरा दर्शक—यही कि दाहिने हाथ से भरपूर.....

धर्मदास—(बात काट कर) दाहिने हाथ से । तब तुम मानते हो कि इसके दाहिना हाथ है, तो वाम हस्त भी होगा ।

दूसरा दर्शक—हाँ हैं—दोनों हाथ हैं ।

धर्मदास—क्या मदिरा के कुप्पे के हाथ होते हैं ?

दूसरा दर्शक—क्या तात्पर्य ?

धर्मदास—तुम्हारा मित्र हमें मदिरा के कुप्पे कहता है । हम मदिरा के कुप्पे हैं—तो हमारे हाथ नहीं हैं—हाथ नहीं हैं तो हाथ से मारा ही नहीं गया ।

जयदेव—और हम मदिरा के कुप्पे नहीं हैं तो इसने हमें ऐसा कहा क्यों ?

धर्मदास—हाँ बोलो कहा क्यों ? (ज़ोर से) ओ न्याय-मूर्ति वीर विक्रमादित्य की नगरी में रहने वालो बतलाओ—न्याय करो, इस दो पाँवों के जंजु ने जिसकी गर्दन पर मनुष्य की खोपड़ी रखी हुई है मनुष्य को मदिरा का कुप्पा कहा है ।

जयदेव—कुप्पा निर्जीव होता है, अर्थात् इसने मनुष्य को निर्जीव कर दिया है—निर्जीव कर दिया है—प्राण ले लिए हैं । प्राण लेने का दंड प्राण-दंड के अतिरिक्त क्या हो सकता है । ले चलो इसे बध-घाला में ।

[कोलाहल सुनकर मधुशाला का स्वामी घाता है ।]

मधुशाला का स्वामी—यह कैसा कोलाहल है ?

जयदेव—कोलाहल, कोलाहल ! भैया कोलाहल किस वस्तु की संज्ञा है ।

धर्मदास—कोलाहल हलाहल का भाई है ।

मधुशाला का स्वामी—बस दो चुल्लू में उल्लू हो गए !

धर्मदास—मधुशाला के स्वामी, तुम मनुष्य को उल्लू बनाने का व्यवसाय करते हो। अच्छा, तो सारे प्रकाशित दीपों को बुझा दो।

जयदेव—हाँ बुझा दो। और आकाश में से चन्द्रमा को भी हटा दो।

मधुशाला का स्वामी—क्यों ?

धर्मदास—अंधकार होने पर तुम दिखाई पड़े तो हम समझेंगे हम उल्लू हैं और नहीं दीखें तो समझेंगे तुम उल्लू हो।

मधुशाला का स्वामी—अच्छा बाबा, उल्लू मैं ही हूँ। अब तो घर जाओ। घरवाली प्रतीक्षा करती होगी। अधिक पी लेने पर नारी के अँचल के नीचे ओंधे मुँह पड़ जाना चाहिए।

जयदेव—तब तो हमें नारी की खोज करनी पड़ेगी।

[दर्शक एक-एक कर सब बिदा हो जाते हैं।]

धर्मदास—खोजते कहाँ जाएँ—मधुशाला तो नारियों का भंडार है—वह लो एक मधुबाला आ ही रही है।

[मधुबाला के वेश में उमा का प्रवेश]

उमा—(मधुशाला के स्वामी से) हूण सैनिक द्यूत-क्रीड़ा-भवन के द्वार खुलवाना चाहते हैं।

जयदेव—(उमा के पास जाकर) ज़रा बैठ जाओ न मधुबाले, मैं तुम्हारे चरणों में ओंधे मुँह गिर जाऊँ—तुम अपने अँचल में मुझे छुपा लो।

उमा—क्या निःशुल्क खोपड़ी के केशों का कर्तन कराना है।

धर्मदास—तो यह मधुशाला नहीं केश-कर्तनालय है। जहाँ खोपड़ी...

जयदेव—खोपड़ी ...। मैं तो भूल ही गया था खोपड़ी। मधुबाला की खोपड़ी।

मधुशाला का स्वामी—तुम जाते हो या अपनी खोपड़ी खुलवाकर ही जाओगे। अभी हूण सैनिक आकर ...

जयदेव—हूणसैनिक ! बुझे हुए अंगारे—उनके दिन गए, मधुस्वामी की शाला ! आज ही मुझ से ज्योतिषाचार्य बाराहिमिहर ने कहा

या कि आकाश में नए नक्षत्र का उदय हुआ है जो हूणों के लिए शानि से भी अधिक सर्वनाशी है। समझे ! यह भविष्य-वाणी मिथ्या नहीं हो सकती।

नेपथ्य से आवाज़—ओ मधुशाला के स्वामी ! कहीं मर गया है ?

आता है या तेरी खोपड़ी की परीक्षा की जाए।

धर्मदास—जाओ, अपनी खोपड़ी की कुशल मनाओ।

[मधुशाला का स्वामी जाने लगता है—उसके पीछे उमा भी जाने का अभिनय करती है, किन्तु जयदेव पकड़ लेता है।]

उमा—हाय राम, बचाओ मुझे, इन राक्षसों से।

मधुशाला का स्वामी—(जाते-जाते) मैं अभी सैनिकों को भेजता हूँ।

[मधुशाला के स्वामी का प्रस्थान ।]

उमा—बस अब एक क्षण भी यहाँ ठहरना ठीक नहीं। नहीं तो तुम्हें अपनी मधुबाला से हाथ धोना पड़ेगा। हूण गुप्तचरो ने हमारी योजना का पता लगा लिया है। सैनिकों की बातों से ज्ञात हुआ है कि कल हूण सेना प्रस्थान करेगी इसलिए मधुशालाएँ, द्यूत-क्रीड़ागार प्रमोद-भवन आदि हूण सैनिकों से भरे हुए हैं।

जयदेव—तो चलो मधुबाले, आज तुम्हारी कपाल-क्रिया कर तुम्हारे मस्तिष्क में जितनी मदिरा की गंध जमा हो गई है उसे उज्जयिनी के उन्मन पवन को निःशुल्क दान कर दूंगा। चलो !

[उमा की चोटो पकड़कर घसीटता है। एक पथिक जो उसी क्षण वहाँ आया है बचाने आता है। धर्मदास तलवार खींचता है। दर्शक ठिठक जाता है।]

धर्मदास—मधुबाला किसी की माँ नहीं है, किसी की कन्या भी नहीं, सहोदरा भी नहीं। समझे...

[धर्मदास दर्शक के कानों में कुछ कहता है।]

उसके परचात जयदेव, घर्मदास और उमा चले जाते हैं। मधुशाला का स्वामी तीन-चार हूण सैनिकों के साथ प्रवेश करता है।]

मधुशाला का स्वामी—(दर्शक से) यहाँ मधुबाला और दो मद्यप थे।

दर्शक—मद्यप बेचारी को इस तरफ़ घसीट ले गए हैं।

[दर्शक उन्हें विपरीत दिशा बता देता है। दर्शक की निर्देशित दिशा में हूण सैनिक और मधुशाला के स्वामी का प्रस्थान, दूसरी दिशा में दर्शक का।]

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

[समय-रात्रि । स्थान-दशपुर का सूर्य-मन्दिर । देवल के पट बन्द हैं, किन्तु भक्त जन के निमित्त निर्मित विशाल कक्ष खुला हुआ है। बीचों-बीच दीप-स्तम्भ है जिस पर अनेक दीप-दान बने हुए हैं, जिस पर दीप जल रहे हैं। मुख्य मन्दिर, जिसमें प्रतिमा है, के द्वार पर एक बड़ा घण्टा है। विष्णुवर्धन और नगर श्रेष्ठी हेमचन्द्र का प्रवेश। विष्णुवर्धन इस समय भी सैनिक वेश में है और हेमचन्द्र सग्री, अंगरखा और अधोवस्त्र धारण किए हुए है। कण्ठ में बहुमूल्य मुक्ताग्रों की माला है।]

विष्णुवर्धन—नगर-श्रेष्ठी हेमचन्द्रजी, प्रतिवर्ष वसंतोत्सव हमारे शिव मन्दिर के उद्यान में मनाया जाना था, किन्तु आज सूर्य-मन्दिर में मनाया जा रहा है, जानते हो क्यों ?

हेमचन्द्र—मनकी बात जान सकूँ ऐसा योगी तो मैं हूँ नहीं ?

विष्णुवर्धन—संभवतः आप यह भी नहीं जानते कि मैंने उत्सव प्रारम्भ होने से कुछ काल पूर्व आपको क्यों बुलाया है ?

हेमचन्द्र—मैं कह चुका हूँ कि मन की बात जानने की विद्या मैंने नहीं पढ़ी ।

विष्णुवर्धन—नहीं पढ़ी यही तो महान अपराध किया आपने श्रेष्ठी शिरोमणि । इस अपराध का दण्ड आपको भोगना पड़ेगा ।

हेमचन्द्र—दण्ड ?

विष्णुवर्धन—दण्ड ऐसे कोमल और प्रिय हाथों से मिलेगा कि आप आश्चर्य-चकित हो जाएँगे ।

[विष्णुवर्धन ताली बजाता है । और एक सुकुमार युवती प्रवेश करती है । उसके एक हाथ में नंगी तलवार और एक में रज्जु है ।]

विष्णुवर्धन—पहचाना !

हेमचन्द्र—(युवती से) पुत्री !

युवती—मैं भारत की पुत्री हूँ ।

विष्णुवर्धन—जानते हो, आप जैन हैं और आपकी पुत्री ने हाथ में तलवार पकड़ी है ।

हेमचन्द्र—संभवतः वसंतोत्सव में अभिनय करने के लिए यह रूप बनाया है ।

विष्णुवर्धन—भद्र महिलाएँ नाट्य अभिनयों में भाग नहीं लेती ।

हेमचन्द्र—आपके सखा वत्स ने इस नियम को अनियमित कर दिया है ।

उसके द्वार संयोजित नाटकों में अनेक भद्र महिलाएँ भाग ले रही हैं । मेरी पुत्री भी यदि भाग ले तो आश्चर्य की बात नहीं ।

विष्णुवर्धन—जिस महान नाटक का सूत्रधार मैं हूँ—वत्स के छोटे-छोटे अभिनय उसके दृश्य मात्र हैं । उस बड़े नाटक में आपको भी भाग लेना पड़ेगा ।

हेमचन्द्र—मुझे रंग-मंच पर आना पड़ेगा ।

विष्णुवर्धन—निश्चय ही ।

हेमचन्द्र—रंग-मंच पर मैं कदली-स्तम्भ की भाँति काँपने लगूँगा ।

आपको भी क्या परिहास सूझा है ?

विष्णुवर्धन—नम्र-श्रेष्ठी, यह परिहास नहीं है । मैं भगवान भास्कर के मन्दिर में खड़ा होकर पूर्ण गम्भीरता से कह रहा हूँ कि आप मेरी आज्ञा मानने को प्रस्तुत न होंगे तो आज की पूजा के फूलों में एक आपका मस्तक होगा और रोली के स्थान पर आपका रक्त होगा ।

हेमचन्द्र—हः हः हः (हँसता है) यह तो परिहास की पराकाष्ठा है ।

विष्णुवर्धन—बाँध लो इस देश-द्रोही नगर-श्रेष्ठी को ।

युवती—(हेमचन्द्र के निकट पहुँचकर) हाथ बढ़ाइए, अन्यथा मुझे बल-प्रयोग करना पड़ेगा ।

हेमचन्द्र—बेटी ।

युवती—मैं कह चुकी हूँ, मैं जननी भारत की सैनिका हूँ ।

हेमचन्द्र—तो तुम नर-बलि, वह भी अपने पिता की, देने में संकोच नहीं करोगी ?

युवती—जो मस्तक हमारे नेता के आदेश की अवहेलना करेगा उसे भू-लुण्ठित होना ही पड़ेगा ।

हेमचन्द्र—अपनी माँ से भी पूछा है तूने ?

युवती—मैं कह चुकी हूँ कि मेरी जननी भारतभूमि है ।

हेमचन्द्र—विष्णुवर्धन, मुझे कुछ सोचने-समझने का अवसर दो ।

विष्णुवर्धन—(युवती से) ठहरा ।

(युवती हेमचन्द्र के पास से हटकर विष्णुवर्धन के निकट आ जाती है ।)

विष्णुवर्धन—(हेमचन्द्र से) क्या सोचना-समझना चाहते हो ।

हेमचन्द्र—यही कि मेरी गर्दन पर मस्तक है या नहीं जिसे मेरी पुत्री काटना चाहती है ।

विष्णुवर्धन—नहीं है तो चलने दीजिये तलवार । जो वस्तु है नहीं, उसके कटने का भय भी क्या ?

हेमचन्द्र—किन्तु बिजली-सी चमकती हुई और साँप की जिह्वा-सी लपलपाती हुई अस्ति को देखकर भय तो होता ही है।

विष्णुवर्धन—तब मान लेना चाहिए कि आपके धड़ पर मस्तक है—
इस मस्तक की भारतभूमि को आवश्यकता है। यह आपको इच्छा पर निर्भर है कि आप मस्तक को धड़ से संलग्न देते हैं या प्रथक।

हेमचन्द्र—मैं तुम्हारी इच्छा के आगे मस्तक भुकाता हूँ।

विष्णुवर्धन—मेरी इच्छा के आगे या अपनी पुत्री की तलवार के आगे।

हेमचन्द्र—मेरी पुत्री का व्यक्तित्व और अस्तित्व तुम्हारी इच्छा के महासमुद्र में समा गया है।

विष्णुवर्धन—मैं चाहता हूँ आपका व्यक्तित्व और अस्तित्व भी अपनी सुपुत्री का अनुकरण करे।

हेमचन्द्र—मेरा कर्तव्य ?

विष्णुवर्धन—आप स्वतन्त्र-भारत-संघ के सन्निधाता है।

हेमचन्द्र—संपूर्ण भारत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है कहाँ ?

विष्णुवर्धन—जन-मन स्वतन्त्र हो जाए तो देश को स्वतन्त्र होने में कितना समय लगता है ?

हेमचन्द्र—भावी स्वतन्त्र भारत-संघ का वर्तमान कोष कहाँ है, जिसका सन्निधाता मुझे बनना है।

विष्णुवर्धन—पहले आप अपने ही भंडार से प्रारम्भ कीजिए।

हेमचन्द्र—उसका कोषाध्यक्ष तो मैं हूँ ही।

विष्णुवर्धन—किन्तु आप अभी तक लोभवश उसके स्वामी और सन्निधाता बने रहे, किन्तु अब कर्तव्यवश उदारतापूर्वक उसका स्वामी देश को बना दीजिए और देश की इच्छा से उसके सन्निधाता आप बनिए।

हेमचन्द्र—अर्थात् !

विष्णुवर्धन—उसका उपयोग देश-हित में होगा ।

हेमचन्द्र—प्रपती सन्तान के लिए मैं...

विष्णुवर्धन—(युवती की ओर इंगित करके) यह है आपकी संतान, जो देश की संतान बनकर अपना मुख-दुख देश के भाग्य में विलीन कर चुकी है ।

हेमचन्द्र—इस भाँति आपने कितने श्रेष्ठियों की संतानों और संपत्तियों पर डाका डाला है ।

विष्णुवर्धन—भारत के प्रत्येक श्रेष्ठी का धन-द्रव्य-भंडार सन्निधाता के अधिकार में है । आप आज्ञा कीजिए कि अमुक श्रेष्ठी के भंडार से इतना द्रव्य चाहिए फिर देखिए आपके (युवती की ओर इंगित करके) ऐसे सैनिक उसे प्राप्त करते हैं या नहीं ।

हेमचन्द्र—तो क्या वास्तव में भारत में अराजकता का सूत्रपात हो गया है ।

विष्णुवर्धन—नहीं श्रेष्ठी महोदय, यह अराजकता नहीं, स्व-राज्य का उषः काल है । जिस प्रकार सूर्य की किरणों को थोड़े से व्यक्त बन्दी बनाकर नहीं रख सकते उसी प्रकार उदार पृथ्वी माता द्वारा प्रदत्त धन्य-द्रव्य-रत्नादिक को कोई बन्दी बनाकर नहीं रख सकेगा । बोलो नगर-श्रेष्ठी, लक्ष्मी के पैरों में साँकल डालना चाहते हो या उन्हें स्वच्छंद नृत्य करने दोगे ।

हेमचन्द्र—जब मैं अपनी पुत्री को भी स्वच्छंद विचरण करने से न रोक सका तो चंचला लक्ष्मी के चिर-चंचल चरण-कमलों में बंड़ियाँ कैसे डाल सकूँगा । समुद्र आकाश से पानी पाता है—आकाश समुद्र से, कौन किसे देता है, कौन किससे पाता है, इसे कौन जानता है । प्रवाह का नाम जीवन है । आप मेरे घर में मृतवत पड़ी हुई लक्ष्मी को जीवन दोगे तो मुझे प्रसन्नता होगी । आप लोग लक्ष्मी को भी नचाओ, सरस्वती को भी नचाओ, महेश को भी नचाओ, गणेश को भी नचाओ, देवों को भी नचाओ, मानवों को भी नचाओ ।

[इसी समय वत्स, सुहासिनी, मंदाकिनी और कंचनी का प्रवेश । कंचनी पाँवों में घुँघरू बाँधे हुए नृत्य करने की संपूर्ण साज-सज्जा से सज्जित है । वत्स मृदंग सम्हाले हुए है । मंदाकिनी के पास वीणा है । सुहासिनी बाँसुरी लिए हुए है । कंचनी के हाथ में एक स्वर्ण थाल भी है जिसमें अप्रज्वलित दीप भी है ।]

वत्स—उत्सव का समय हो गया है, नागरिक जनेन्द्र के आदेश की प्रतीक्षा में है ।

[विष्णुवर्धन घंटा-ध्वनि करता है । पुजारी आकर देवल के पटों का उद्घाटन करता है । उपस्थित जन सूर्य प्रतिमा को नमन करते हैं । बाहर के अन्य नागरिक स्त्री पुरुष आ आ कर एकत्रित होते हैं । आगंतुकों में अभयदत्त और महाज्ञान भी हैं ।]

विष्णुवर्धन—दशगुर के आदरणीय नागरिकों, मैंने परिपाटी मंगकर शिव-मन्दिर-उद्यान के स्थान पर सूर्य-मन्दिर में वसंतोत्सव का आयोजन किया है, संभवतः इससे आप आश्चर्य-चकित होंगे ।

अभयदत्त—नवीनता-जनित आश्चर्य में एक विलक्षण रहस्यमय आनन्द होता है ।

विष्णुवर्धन—किन्तु मैं अपने स्नेही नागरिकों की जिज्ञासा के आगं से रहस्य के आवरण का निवारण करना अपना कर्तव्य समझता हूँ । शिव-मन्दिर मेरा अपना है और मैंने अपने अपनेपन को जनता जनार्दन की गोद में फेंक दिया है, इसलिए मैं उनसे ऐसे स्थान पर मिलना चाहता था जिसे वह अपना कह सकें । यह सूर्य-मन्दिर तंतुवाय श्रेणी द्वारा निर्मित सार्वजनिक स्थान है और सार्वजनिक महत्व का उत्सव ऐसे ही स्थान पर होना उचित है ।

वस्स—और प्रिय नागरिको, आज का उत्सव प्रतिवर्ष के समारोह से भिन्न है। आप निराश होंगे कि आज के उत्सव में न मदिरा है न मधुबालाएँ।

एक नागरिक—तो व्यर्थ ही यहाँ इतनी भीड़ जमा करली। क्या मदिरा के बिना भी बसंतोत्सव होता है—जैसे जलहीन सरिता, निष्प्राण शरीर। वर्ष में एक ही तो दिन आता है जब हम सार्वजनिक रूप में पी पिला सकते हैं—सभ्यता के कृत्रिम बंधनों से मुक्त होकर मानव अपनी वास्तविक प्रकृति में प्रकट हो सकता है।

विष्णुवर्धन—जीवन में कभी-कभी उन्मुक्त आनन्दोत्सव मनाने के क्षणों के आगमन का मैं स्वागत करता हूँ—और उन्हें जातीय जीवन के लिए स्वास्थ्यकर समझता हूँ, किन्तु आज की परिस्थिति में हमारा सतत जागरूक रहना अनिवार्य है। हमारा देश विराट बन्दीगृह बना हुआ है। विदेशी हूँग अत्याचार, अनय और हिंसा के प्रतीक बने हुए देश के सुख, शान्ति और स्वाभिमान को मर्दित करते हुए उन्मत्त गज की भाँति विचरण कर रहे हैं।

सुहासिनी—और आज न हमारा धन सुरक्षित है, न जीवन। इतना ही नहीं राम और कृष्ण के वंशज अपनी आँखों के आगे विदेशियों द्वारा मातृ-जाति का अपमान होते देखते हैं।

एक नागरिक—जब राजा ही नपुंसक बनकर महलों में जा बैठे तब नागरिक कहाँ तक अपने शीश कटाएँ !

विष्णुवर्धन—ऐसी स्थिति में नागरिकों को अपने हाथ में दंड लेना चाहिए।

दूसरा नागरिक—किन्तु राज-सत्ता इसे विद्रोह कहती है।

विष्णुवर्धन—राज-सत्ता से अधिक शक्तिशाली जन-सत्ता है। प्रारम्भ में युद्ध के वातावरण में सेना और जाति का नेतृत्व करने के लिए राजा का जनता द्वारा निर्वाचन हुआ था, पीछे यह पद पैतृक

बन गया। देश का शासन, न्याय-दान, पालन एवं रक्षण राजा का कर्तव्य है। राज्याभिषेक के समय उसे इसकी प्रतिज्ञा लेनी होती है। प्रतिज्ञा-च्युत होने पर प्रजा राजा को अधिकार च्युत कर सकती है।

महाज्ञान—राज-सत्ता को पैतृक न रखना इसीलिए उत्तम है कि राजा अपने आपको देश का स्वामी न समझने लगे। वास्तविक स्वामी तो जनता है।

मंदाकिनी—आज तो हमारी जन्मभूमि के वक्ष पर अत्याचार का नग्न नृत्य करने वाली सत्ता न तो भारतीय है न जनता द्वारा निर्वाचित। उसके प्रति विद्रोह करना तो हमारा कर्तव्य है।

अभयदत्त—और एक दीर्घ समय से विदेशी सत्ता के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह की योजना कार्य कर रही है। आज इस समाचार की सार्वजनिक घोषणा करने की स्थिति में हम हैं।

विष्णुवर्धन—हमारा पर्याप्त कार्य हो गया है, हमारे पास एक सुसंगठित, सुशिक्षित सेना है। शत्रु के विपुल शस्त्रास्त्र हमारी गुप्त सेना ने छीन लिए हैं और बहुसंख्या में शस्त्रों का निर्माण हो रहा है। सर्वतोभद्र, जामदग्न, विश्वासघाती जैसे संहारक शस्त्रों का भी निर्माण हमने कराया है। शस्त्र-निर्माण करने वाली श्रेणी के प्रतिनिधि भी आज यहाँ उपस्थित हैं।

वरस—और आपको प्रसन्नतापूर्ण आश्चर्य होगा कि अपने पक्ष का एक बिन्दु गिराए बिना प्रथम विजय हमने प्राप्त करली है। हमारे एक योद्धा ने हूण-सम्राट तोरमाण की जीवन-लीला समाप्त करदी है। यह योद्धा भी यहीं उपस्थित है।

हेमचन्द्र—कौन है वह योद्धा ?

विष्णुवर्धन—(कंचनी की तरफ अँगुली से निर्देश करता है) यह वह यशस्वी योद्धा जो आज के वसंतोत्सव की प्रधान नर्तकी

है। कंचनी, अपने सुकुमार तनकी तरंगों को गति दो साथमें कंठ से प्रमत्त-वर्षा होने दो।

[कंचनी स्वर्ण-धाल में रखे हुए बज्र-नखि जड़ित दीपकों को प्रज्वलित कर ज्योति-नृत्य करती है और गाती है। मंदाकिनी, सुहासिनी और वत्स घाघ बजाते हैं।]

कंचनी—(गान और नृत्य)

रात काली है घटाएँ धिर रहीं काली,
रक्त पीने के लिए व्याकुल हुई काली।
हर नहीं मानव—मलय की रात है,
रात के पीछे सुनहरा प्रात है।
है गगन के एक कोने में नई काली,
रात काली है घटाएँ धिर रहीं काली।
भूमि में जागी लहू की प्यास है,
किस लिए होता दुखी आकाश है?
नभ नहीं मानव भरेगा भूमि की प्यास,
रात काली है घटाएँ धिर रहीं काली।
हाल प्रण की घटिका दीपक जला,
ज्योति के, तमके हृदय पर, शर चला।
भूमि मावस में जलाए क्यों न दीवाली,
रात काली है घटाएँ धिर रहीं काली।
[संपूर्ण जन-समुदाय कंचनी के नृत्य का मंत्र-
मुग्ध होकर आनन्द लेता है। अकस्मात्
धर्मदास, जयदेव और उमा का प्रवेश। तीनों
गत दृश्य की वेश भूषा में ही हैं।]

उमा—प्रब नवीन नृत्य प्रारम्भ होगा।

[नृत्य-गान रुक जाता है]

त्रिष्णुवर्धन—क्या है उमा ?

उमा—विस्फोट ! विद्रोह प्रकाश में आगया है । हूण सेना विद्रोहियों की खोज में निकल पड़ी है । अब हमें अंधेरे विवरों के बाहर निकलना पड़ेगा ।

त्रिष्णुवर्धन—इसके लिए हम पूर्ण रूप से प्रस्तुत हैं । अंधकार के विवर से राष्ट्र का प्रसुप्त तेज बाहर आएगा और हमारे खड्ग शत्रु के हृदय-प्रदेश में अपना विवर बनाएंगे । यह वसंतोत्सव रणोत्सव में परिवर्तित होगा । (पुजारी से) कीजिए आप अपनी पूजा प्रारंभ । यहाँ उपस्थित नागरिक सूर्य-भगवान के सम्मुख वीर-गति अथवा विजय प्राप्ति के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध होंगे ।

[पुजारी देवद्वार में प्रवेश करता है । त्रिष्णुवर्धन

प्रतिमा के निकट रखा शंख उठाकर बजाता है ।

वत्स घंटा बजाता है ।]

[पटाक्षेप]

तीसरा अंक

प्रथम दृश्य

[स्थान—चर्मवती-तट पर हूण-सैनिक-शिविरके सामने का मैदान । समय-दिवस । हूण-सम्राट मिहिरकुल, हूण-सेनापति और धन्यविष्णु का प्रवेश । तीनों सैनिक वेश में हैं। नेपथ्य में अश्वों के पद-चाप, रथों के चलने का शब्द एवं सेनाओं में होने वाला अन्य कोलाहल कुछ-कुछ सुनाई देता है ।]

मिहिरकुल—महाराज धन्यविष्णु, जब उस नागिन सी नर्तकी ने पिता श्री को इस लिया तब मैंने समझा था कि आप ही वह सेंपेरा हैं जिसकी तूँबी पर वह नृत्य करती है । मुझे कंचनी से अधिक आप पर क्रोध आया था । मेरा रोष आपकी काया के खंडखंड करने को प्रस्तुत हो गया था ।

धन्यविष्णु—आश्चर्य, मेरे मस्तक को चूर्ण करने वाला बज्र आकाश में चमक कर ही क्यों रह गया ! मेरा निर्लज्ज अस्तित्व धरा की छाती पर व्यर्थ ही लदा हुआ है !

सेनापति—प्रकृति के तूफानों को विध्वंस का कार्य अपूर्ण छोड़कर रुकते हुए मानव ने देखा है, किंतु प्रलय-रूप मिहिरकुल के प्रचंड रोष को किसी ने अपने कोप-भाजन को समाप्त किए बिना शांत होते नहीं देखा । निश्चय ही आपके नक्षत्र ऊँचे हैं । आप केवल मालव-नरेश ही नहीं रहेंगे अपितु गुप्त-सम्राट का स्थान भी ग्रहण करेंगे ।

मिहिरकुल—निश्चय ही, हूण कृतघ्न नहीं हैं । वे मित्र के मित्र और शत्रु के शत्रु हैं । वे जितने कठोर हैं उतने ही कोमल हैं । पृथ्वी के समान उनके हृदय में अग्नि और जल दोनों विद्यमान हैं, उनकी

ग्रांखों में सृष्टि और संहार दोनों का निवास है, वे किसी के लिए वरदान हैं तो किसी के लिए अभिशाप ।

सेनापति—इस समय विद्रोही मालवों से जो युद्ध करना पड़ रहा है वह मालव-प्रदेश में हूण-सत्ता को स्थिर रखने के लिए नहीं, अपितु यहाँ अपने मित्र मालव-नरेश धन्यविष्णु की प्रभुता को सुदृढ़ बनाने के लिए ही मालव भूमि में हूणों का रक्त भी सींचा जा रहा है ।

धन्यविष्णु—धन्यविष्णु हूण-सम्राट का सदैव उपकार मानेगा और अपना तन-मन-धन न्योछावर करने को प्रस्तुत रहेगा । मुझे इस बात का दुख है कि मेरे ही प्रदेश में सर्व प्रथम हूण-सत्ता के विरुद्ध विद्रोह उठ खड़ा हुआ है, किन्तु विश्वास कीजिए इसमें मालव-प्रदेश के सम्भ्रांत भद्रजनोंका हाथ नहीं है । दो चार धन्यविष्णु और वत्सभट्ट जैसे तरुणों ने जनता के निम्नवर्ग को देश-प्रेम के भ्रामक किन्तु उत्तेजक गीत गाकर उभाड़ दिया है ।

सेनापति—किन्तु, मुझे खेद-सहित निवेदन करना पड़ता है कि मालव नरेश ने इस आत्मघाती विपत्ती भावना को रोकने के लिए प्रारंभ में ही प्रयत्न नहीं किया । तभी इन दस्युओं को हमारे जल-मार्ग एवं स्थल-मार्ग से आने वाले शस्त्रास्त्र लूटने का दुस्साहस हो सका और हमारे ही शस्त्रास्त्र आज हमारा काल बनने को प्रस्तुत है ।

धन्यविष्णु—मगध से संग्राम-रत रहने के कारण यह असावधानी हो गई और इन कापुरुषों को हमारी पीठ पर छुरा भोंकने का अवसर मिल गया ।

मिहिरकुल—किन्तु हूण-शक्ति रूपी प्रचंड सिंह दस्यु-दल-रूपी पशु-दल का आखेट करने आ पहुँचा है । हूणों ने कभी किसी की पीठ पर प्रहार नहीं किया, वे मुक्ताकाश की छाया में वक्षस्थल खोलकर खड़े होते हैं—शत्रु के वक्षस्थल पर ही प्रहार करते हैं । उनका एक चरण सिंहासन पर होता है और एक श्मशान पर ।

सेनापति—आपका कथन सर्वथा सत्य है, सम्राट ! हूण-असि ने सारे हरिवर्षों का वक्षस्थल चीर डाला, संसार की श्रेष्ठतम, प्रबलतम, कुशलतम गुप्त-सम्राटों की शक्ति से निरंतर टकराते रहकर अंत में गुप्त-साम्राज्य के भव्य-भवन को खंडहर बना ही दिया, किंतु सम्राट, तलवार से साम्राज्यों का निर्माण हो सकता है उन्हें स्थायित्व प्रदान नहीं किया जा सकता ।

मिहिरकुल—तब ?

सेनापति—मस्तकों को काट कर नहीं, मस्तकों को अपना बना कर ही हम स्थायी विजय पा सकेंगे । विष्णुवर्धन ने बिना शस्त्र चलाए ही मानव-जन-मन पर अपना अखंड साम्राज्य स्थापित कर लिया है । सम्राट मिहिरकुल और उनके अनन्य मित्र धन्यविष्णु के प्रति मालव-मन में संचरित घृणा के भंभावात को शस्त्र शांत नहीं कर सकेंगे । आज यदि हूण-वाणी विष्णुवर्धन को विद्रोही और सम्राट मिहिरकुल को मालवों का संरक्षक और हितचिंतक उच्चारित कभी तो मालव-प्राण अट्टहास कर उठेंगे । हाँ, महाराज धन्य-विष्णु स्वयं एवं उनके स्वजातीय विश्वसनीय व्यक्ति गाँव-गाँव में भ्रमण करके विद्रोहियों की स्वार्थपरता पर प्रकाश डालें तो मालव-प्रदेश युद्ध की विभीषिका से आण पा सकता है ।

मिहिरकुल—गुप्त-सम्राट ने हूण-शक्ति से संघर्ष करने की व्यर्थता को समझकर हमसे संधि कर ली है, मालव नरेश हमारे सखा हैं, भारत के किसी भी प्रदेश का अधिपति हमसे छेड़छाड़ करने का दुस्साहस नहीं करता । हमने गुप्त-सम्राट से संधि कर ली इसी का अर्थ है कि हमारी विजय-लालसा भी समाप्त हो गई । हम तो भारत में सुख और शांति का साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं, किंतु ये भारत के स्वयंभू प्रतिनिधि विष्णुवर्धन और वत्स भट्ट मूर्ख और उद्धत मालव तरुणों

को उन्मत्त कर निरीह जनता के प्राणों से खिलवाड़ कर रहे हैं । महाराज धन्यविष्णु, आप अपने देशवासियों को वास्तविक स्थिति से परिचित कीजिए ।

धन्यविष्णु—मालव-जन-मन में वास्तविकता का प्रकाश प्रसारित करने का पूर्ण प्रयत्न मेरी ओर से हो रहा है, किंतु, जब से जनता को यह ज्ञात हुआ है कि विष्णुवर्धन ने आपका पोत लूट लिया, एवं आपकी सेना से सुदर्शनहृद के समीप शस्त्र छीन लिए तब से उसके प्रति जनता के हृदय में अंध श्रद्धा स्थापित हो गई है । लोग उसे दैवी शक्ति-संयुक्त समझने लगे हैं । जब तक एक बार इन विद्रोहियों को सैनिक पराजय नहीं मिलेगी तब तक जन-मन से इनका प्रभाव दूर नहीं होगा ।

[एक सैनिक के साथ एक श्रेष्ठी का प्रवेश । दोनों मस्तक नमन कर मिहिरकुल को नमस्कार करते हैं ।]

सैनिक—सम्राट की आज्ञानुसार उज्जयिनी के नगर-श्रेष्ठी को ले आया हूँ ।

मिहिरकुल—आप उज्जयिनी के नगर-श्रेष्ठी हैं ।

श्रेष्ठी—लोग ऐसा कहते हैं किंतु वास्तव में तो मैं एक साधारण नागरिक हूँ ।

मिहिरकुल—आपके पास कितना धन है ?

श्रेष्ठी—मेरे प्राण भी मेरे नहीं—तब धन को अपना कैसे कहूँ ?

मिहिरकुल—जो आपके पास है यदि वह आपका नहीं है तब यदि मैं उसे ले लूँ तो आपको आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

श्रेष्ठी—किंतु वह जिनका है, उन्हें तो आपत्ति होगी ।

धन्यविष्णु—मैं जानता हूँ आप अपनी सम्पत्ति के स्वामी हैं ।

श्रेष्ठी—नहीं राजन, गुप्त-सम्राट के धर्म-महामात्य जानते हैं कि मैंने अपनी प्रायः सभी सम्पत्ति विविध धार्मिक एवं सार्वजनिक कार्यों के लिए प्रक्षय निधियाँ स्थापित करने में लगा दी है ।

सेनापति—आप जैन हैं ?

श्रेष्ठी—प्रवर्य ।

सेनापति—और धन्यविष्णु शैव है। वैसा शैव जैसा जैन गुरु कालकाचार्य की सहोदरा सरस्वती का बलपूर्वक अपहरण कर संपूर्ण जैन-धर्मावलंबियों का अपमान करने वाला मालव-गणपति राजा गर्दभिल्ल था।

श्रेष्ठी—इतिहास की इस काली कोठरी में प्रवेश करने का प्रयोजन ?

मिहिरकुल—कालकाचार्य ने शकों की सहायता की थी—आप हूणों की कीजिए। शैव जैनियों के शत्रु हैं।

श्रेष्ठी—महाराज धन्यविष्णु भी तो महाकाल के भक्त हैं, क्या मैं इन्हें अपना शत्रु समझूँ।

मिहिरकुल—महाराज धन्यविष्णु और विष्णुवर्धन में बहुत अंतर है, श्रेष्ठी।

श्रेष्ठी—और इस तुच्छ श्रेष्ठी और आचार्य कालकाचार्य में भी बहुत अंतर है हूण-सम्राट ! यदि राजा मेरी भगिनी का अपमान करे तो मैं उस लम्पट राजा के विरुद्ध जनता-जनार्दन की राज सभा में आवेदन करूँगा—राजा को जनता द्वारा दंड दिलवाऊँगा—न कि, प्रतिहिंसा से पागल होकर राजा को—एक व्यक्ति को—दंड देने के लिए अपने देश पर विदेशी सत्ता को बुला लूँगा।

धन्यविष्णु—आपको ज्ञात है कि मेरे अग्रज मातृविष्णु ने आपको भारतीय पदार्थों का विदेश में निर्यात करने का अधिकार दिया था, उसी सुविधा से आप धनकुबेर बने हैं।

सेनापति—अपने उपकारक के अनुज के प्रति आपको कृतघ्न नहीं बनना चाहिए। कृतघ्नता मानव का निकृष्टतम दुर्गुण है।

श्रेष्ठी—निश्चय ही, महाराज धन्यविष्णु को आपके उपदेश पर ध्यान देना चाहिए। जन्मभूमि से बड़ा उपकारक कौन है—जो जन्मभूमि से विश्वासघात करते हैं उन्हें क्या संज्ञा दी जाए—मेरे जैसा मंद बुद्धि तो यह सोच नहीं सकता।

मिहिरकुल—आप मेरे मित्र का अपमान कर रहे हैं श्रेष्ठी, आपको हूण-

असि का भय नहीं है ।

श्रेष्ठी—अहिंसा पर विश्वास करने वाले महाप्राण निकृष्ट निर्दय असि से भयभीत नहीं होते ।

धन्यविष्णु—तुम्हें अपने प्राण प्रिय नहीं हैं ।

श्रेष्ठी—मैं कापुरुष, कृतघ्नी, स्वार्थी और देश-द्रोही बनकर जीने से मरण को श्रेष्ठ समझता हूँ ।

मिहिरकुल—मुझे, आपसे युद्ध-कार्य के लिए एक कोटि काषापण चाहिए ।

श्रेष्ठी—मैं अपना प्रायः सारा ही धन धार्मिक अक्षयनिधियों को दे चुका हूँ—जो शेष है वह भी अपने ही देशवासियों के साथ रक्त की होली खेलने के लिए प्रदान नहीं करूँगा ।

मिहिरकुल—यह आपका अंतिम निश्चय है ।

श्रेष्ठी—सत्य-पथानुगामी किसी की लाल आंखें देखकर पथ-भ्रष्ट नहीं होता ।

मिहिरकुल—(सैनिक से) ले जाओ इस अभिमानी श्रेष्ठी को और भूमि में गहरा गड्ढा खोद कर जीवित ही गाड़ दो ।

[सैनिक श्रेष्ठी को पकड़ना चाहता है ।]

श्रेष्ठी—पकड़ने की आवश्यकता नहीं । मैं मृत्यु-मुख से भागने का प्रयास नहीं करूँगा ।

[सैनिक और श्रेष्ठी का प्रस्थान ।]

धन्यविष्णु—विष्णुवर्धन ने लोगों के मस्तिष्कों में विष भर दिया है ।

मिहिरकुल—विष भर दिया हो चाहे अमृत, आपके राज्य की रक्षा करने के लिए विपुल धन, जन और शस्त्र-स्त्र को आवश्यकता पड़ेगी । हम यह भार, वह भी अपने स्थान से सहस्त्रों कोस दूर बैठकर, वहन नहीं कर सकते । सब कुछ आपको ही एकत्रित करना होगा ।

धन्यविष्णु—मैं शक्ति-भर प्रयास करूँगा । जो सहर्ष सहयोग नहीं देगा

उस राज-द्रोही से बलपूर्वक उसका सर्वस्व अपहरण कर लिया जाएगा ।

[एक सैनिक एक बंदी किए हुए ग्रामीण मालव-सहित प्रवेश करता और सम्राट मिहिरकुल को मस्तक झुकाकर नमस्कार करता है ।]

हूणसैनिक—सम्राट की आज्ञानुसार बंदी उपस्थित हैं ।

मिहिरकुल—तुम चर्मवती में नौका-संचालन का व्यवसाय करते हो ?

बंदी—हां ।

सेनापति—कितनी नौकाएं हैं तुम्हारे पास ?

बंदी—एक भी नहीं ।

धन्यविष्णु—कहां गईं !

बंदी—अग्निदेव को अर्पित कर दीं ।

मिहिरकुल—क्यों ?

बंदी—मुझे भय था कि मेरी नौकाओं का सेतु बनाकर हूणसैनिक चर्मवती को पार करेंगे ।

मिहिरकुल—तो अब तुम्हारे शव पर से हूण अश्वारोही प्रयाण करेंगे ।

बंदी—मुझे संतोष होगा कि मेरे जीवित रहते मेरी नौकाओं का प्रयोग मेरे देश के विरुद्ध नहीं हुआ ।

मिहिरकुल—(सैनिक से) ले जाओ इसे और हाथ पंर बाँधकर इसे भूमि पर डाल दो और अश्वारोही सेना से कह दो कि अश्वों से मर्दित कर इसको उस मालव मृत्तिका में मिला दो जिसे यह प्राणों से अधिक प्रिय समझता है ।

[सैनिक बंदी को ले जाता है ।]

मिहिरकुल—देखा इसके प्रमाद को ! ऐसा निश्चित जा रहा था मानों विवाह करने जा रहा है ।

सेनापति—यह वही मालव है जिसे हूण-सेना ने अत्यंत सरलता से अपने अधिकार में ले लिया था ।

धन्यविष्णु—क्योंकि उसके गोप्ता ने विश्व-विजेता हूण-शक्ति से युद्ध करने के स्थान पर उसका स्वागत किया था ।

मिहिरकुल—गोप्ता ने राजा बनने के लिए विदेशी-सत्ता का स्वागत किया—किंतु मालव-प्रजा तो न मालव नरेश को राजा मान सकी न हूण-सम्राट को सम्राट, वह तो अपराजित, स्वतंत्र और स्वाधीन है । वह यदि किसी की आज्ञा मानती है तो अपने उद्धारक हृदय-सम्राट विष्णुवर्धन की ।

[एक गुप्तचर का प्रवेश और मस्तक नत कर नमस्कार करना ।]

मिहिरकुल—क्या समाचार लाए हो ?

गुप्तचर—सम्राट ! शत्रु-सेना हमारे पृष्ठ एवं दोनों पार्श्व भागों पर एक साथ अकस्मात् आक्रमण करना चाहती है ।

विष्णुवर्धन—किंतु शत्रु-सेना तो चर्मवती के उसपार है ।

गुप्तचर—शत्रु-सेना सब जगह है । चर्मवती के उसपार की सेना वहीं रहेगी—इस पार की सेना इस पार युद्ध करेगी । दूसरी बात यह है कि किसी भी मालव ग्राम से हमें अन्न का एक दाना भी प्राप्त नहीं होगा । जहाँ देखते हैं वहीं भंडार रिक्त पाते हैं । भगवान् जाने धान्यागार मालव प्रदेश का अन्न भूमि खा गई या क्या हुआ ?

सेनापति—शत्रु रण नीति में कुशल नहीं है या उसके सैनिक शिक्षित और अनुशासन-बद्ध नहीं हैं, ऐसा हमें नहीं मानना चाहिए ।

मिहिरकुल—मिहिरकुल को प्रथम बार वास्तविक युद्ध करना पड़ेगा । एरण में भी गुप्त सम्राट की सेना से घोर संग्राम करना पड़ा था । एक बार तो ऐसा जान पड़ा था कि हूण-सैनिकों के धैर्य को स्थिर रखना असंभव होगा किंतु हमारे संख्या-बलने मागधों को पराजित कर दिया । अब हमें उससे भी अधिक भयंकर युद्ध करना पड़ेगा ।

सेनापति—मैं तो समझता हूँ वर्तमान परिस्थितियों में प्रथम आक्रमण हमें करना चाहिए ।

धन्यविष्णु—किंतु हम चर्मवती के उसपार की शत्रु-सना को ही जानते हैं—और वर्षा ने चर्मवती को उन्मादमयी कर दिया है ।

मिहिरकुल—वीरों का मार्ग वर्षा का पानी, पर्वतों की ऊँचायियाँ, या सागर की उत्ताल तरंगें नहीं रोक सकतीं । चाहे मुझे अपने सैनिकों के शवों का सेतु बनाना पड़े, किंतु मैं उस पार जाकर विष्णुवर्धन से दो हाथ करूँगा । चलिए शिविर में बैठकर आक्रमण की योजना निश्चित कर ली जाए ।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—मालव सैनिक-शिविर में वत्स का डेरा जो अन्य डेरों से पृथक् एकान्त में है । डेरे का केवल बाह्य भाग दृष्टि-गोचर होता है । कंचनी और वत्स डेरे के अन्तर्प्रदेश से बाहर आते हैं । दोनों ही साधारण वेश-भूषा में हैं । दोनों डेरे के बाहर भूमि पर ही बैठ जाते हैं । वत्स एक दीर्घ निश्वास छोड़ता है ।]

कंचनी—बहुत आंत हो गए हो आज के युद्ध में ।

वत्स—तुम्हारे मनोरम मुखारविंद का मेरे नयनों के अलि कुछ और मधु-पान कर लें इसलिए जीवित बच गया हूँ । अप्रत्याशित परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी ।

कंचनी—अप्रत्याशित क्या ?

वत्स—हमें आशा नहीं थी कि हूण चर्मवती के इस पार आकर हम पर आक्रमण करेंगे । हमने अभयदत्त, धर्मदत्त और जयदेव के नेतृत्व में शत्रु के पृष्ठ और पार्श्व भागों पर आक्रमण करने की योजना बनाई थी—किंतु रण-कुशल मिहिरकुल ने हमें आक्रमण का अवसर

नहीं दिया । स्वयं ही चर्मवती को पार कर पो फटने के पूर्व ही आकाश के लाल होने से पहले पृथ्वी को रक्त से रंगना प्रारम्भ कर दिया ।

कंचनी—मिहिरकुल भयानक ही नहीं चतुर भी है ।

वत्स—हाँ, किन्तु विष्णुवर्धन भी कम नहीं है । उसने निमिष मात्र में सेना को चक्र-व्यूह में संगठित कर लिया । जिस प्रकार कठोर चट्टान पर गिरकर प्रपात की धारा अगणित जल-कणों में छितरा जाती है उसी तरह शत्रु-सेना हमारे व्यूह से टकरा टकराकर छिन्न भिन्न होती रही । अन्त में हूण कन्नी काटकर उत्तर की तरफ़ सिमिट गए ।

कंचनी—क्यों, पुनः चर्मवती के उस पार अपने शिविर में नहीं पहुँचे ।

वत्स—वहाँ कैसे जाते, वहाँ तो अभद्र दत्त, धर्मदास और जयदेव योजना के अनुसार पहुँच गए थे ।

कंचनी—ज्ञात होता है फिर मालव प्रदेश में प्रवेश करने का विचार मिहिरकुल ने त्याग दिया है ।

वत्स—ऐसा ही जान पड़ता है । उसने अनुभव कर लिया है कि जब तक विष्णुवर्धन और उसके उन्मत्त अनुचर हैं तब तक उसकी आकांक्षाओं की खेती मालव भूमि में नहीं फल सकती ।

कंचनी—तब क्या युद्ध का अन्त निकट है ।

वत्स—निकट नहीं बहुत दूर जा पहुँचा है । यदि मिहिरकुल ने रात्रि में ही चर्मवती को पार न कर लिया होता तो हमारी योजना के अनुसार चर्मवती के तट पर ही मिहिरकुल, धन्यविष्णु आदि चिर-निद्रा में लीन हो जाते ।

कंचनी—तब यह कहना चाहिए कि यह हमारी प्रथम पराजय है ।

वत्स—पराजय कैसी ? हमने हूणों को मालवभूमि से निर्वासित कर दिया है । यह तो हमारी प्रथम महान विजय है किन्तु कितनी मँहगी पड़ी है यह विजय ? हूण साधारण योद्धा नहीं हैं । उनके

नाम से ही संसार की महान जातियों के प्राण कम्पायमान हो उठते हैं। उन्होंने ने अपने मस्तक का कुछ मूल्य समझा है न अन्य के।

कंचनी—तब तो नर-मुँडों से रण-क्षेत्र भर गया होगा।

वत्स—हाँ, अनेक महाकालियों की मालाओं का निर्माण हो सकता था, शंकर के गण भूत-प्रेत-पिशाच युग युग की प्यास बुझा सकते थे।

कंचनी—क्या महाकाली और शंकर के गणों के दर्शन हुए तुमको।

वत्स—नहीं कंचनी, धरती माता ने ही महाकाली का रूप धारण कर मुँडमालाएँ धारण करलीं, अपना खप्पर फैलाकर स्वयं ही सारा रक्त पी लिया और फिर भी बोली कि मैं प्यासी हूँ। मैं तो धरती माता का ऐसा भयंकर रूप देखकर कांप उठा। मैं सोचने लगा, किसने शस्य श्यामला वैभवमयी मनोरमा मही को ऐसा कुरूप बना दिया।

कंचनी—मनुष्य की रणोन्मत्तताने।

वत्स—युद्ध के समान भयानक और कुत्सित कार्य कोई है, कंचनी, सभ्यता का अभिशाप है यह।

कंचनी—ऐसी ही घृणा है युद्ध से तो इसे समाप्त करादो न!

वत्स—युद्ध का प्रारम्भ मनुष्य के हाथ में है अन्त नहीं। तथागत और अर्हत भी युद्ध से युद्ध करके विजय प्राप्त न कर सके। तथागत के अनुयायी देवपुत्र कनिष्क के रणोन्माद और विजय—लालसा से उसके सामंत इतने श्रांत हो गए थे कि उन्होंने रात को उसकी निद्रावस्था में हत्या करदी। कलिंग का चेदिकुल-अवतंस खारबेल जैन था—किन्तु विजय-प्राप्ति के उन्माद में उसने पृथ्वी पर क्या कम रक्त बहाया?

कंचनी—तब क्या अहिंसा के पथ पर चला ही नहीं जा सकता।

वत्स—अहिंसा का पथ परम योगियों के लिए ही संभव है। हम इतना भी करलें तो बहुत समझो कि स्वयं स्वार्थ-सिद्धि या प्रभुता-प्राप्ति के लिए हिंसा का आश्रय न लें। जब हिंसा हम पर आक्रमण करे या हमारे

सामने निरपराध और निरीहों का जीवन लिया जाए तब क्या हम केवल मुंह निहारते रहें । हिंसा का उत्तर हिंसा से देना ही पड़ता है । तब हिंसा और प्रतिहिंसा के आवर्त और प्रत्यावर्त की सृष्टि होती है । भवसागर रक्त-सागर बन जाता है ।

कंचनी—थोड़े से व्यक्तियों की महत्वाकांक्षाएं स्वर्ग से भी सुन्दर वसुधा को नरक का प्रतिरूप बना देती हैं । पृथ्वी का उदर फाड़कर मनुष्य जो कुछ उपलब्ध करता है वह सब शस्त्रास्त्रों के निर्माण और बड़ी-बड़ी सेनाओं के पालन के सर्वभक्षी मुख में समा जाता है । शिक्षा-कला और संस्कृतियाँ कराह उठती हैं, उनका साँस लेना भी दुर्लभ हो जाता है । मानव शील, सभ्यता, नीति और न्याय को भूल कर मानव-आखेट में निरत रहता है ।

वत्स—जब तक मानव-हृदय में प्रतिस्पर्धा की भावना है तब तक मानव मानव का आखेट करने से विरत नहीं होगा । किसी दिन मिहिरकुल तुम्हारे रूप, सौन्दर्य और कला के प्रति आकर्षित हो सकता है, उसे भी तुम्हारा मोह हो सकता है तब मिहिरकुल और वत्स में प्रतिस्पर्धा होगी । रावण को राम की सीता प्रिय थी इसलिए राम-रावण युद्ध हुआ । यही स्पर्धा भूमि के संबंध में भी होती है—भारतभूमि सुन्दर, सुखद, उर्वरा, खनिज पदार्थों से भरपूर है इसलिए जिन देशों की भूमि कृपण अथवा बाँझ है वहाँ के निवासी इस पर अधिकार करना चाहते हैं और देश के पहले से रहने वाले व्यक्ति नवागन्तुकों से युद्ध करते हैं ।

कंचनी—भारत ने कहा है—सारी वसुधा एक कुटुम्ब है । कुछ व्यक्ति शस्यश्यामला उर्वरा भूमि पर अधिकार जमा बैठें और अन्य मरु-स्थलों में भटकते फिरें या हिमावृत प्रदेशों में अपने जीवन को गलाते रहें, हम प्रकृति के वरदानों पर एकाधिपत्य स्थापित कर अपने ऐश्वर्य पर गर्वित हों तो अभावों की ज्वाला में जलने वाले मानव समूह बाँध कर हम पर आक्रमण करेंगे । तब हम देश-प्रेम

की सज्ञा देकर अपने स्वार्थों की रक्षा करने के लिए उन चिर-वंचितों के प्राण लेंगे ।

वत्स—भारत ने किसी जाति को भारत की संतान बन कर यहाँ निवास करने और समान सुख-सुविधाएँ भोगने से वंचित नहीं किया । किंतु हम किसी का शासन अपने ऊपर महन नहीं करेंगे । हम किसी देश को लूटना नहीं चाहते—प्रकृति ने जो कुछ हमें दिया है हम उसे लेकर संतुष्ट हैं ।

कंचनी—प्रकृति ने भारत को जो दिया है वह यदि अधिक है तो उसे संसार में वितरित होना ही चाहिए । जब तक हम देशों की प्राचीरों को चीरेंगे नहीं मानवता का मंगल नहीं होगा ।

वत्स—तुम्हारा तात्पर्य है कि मंगलामुखी के प्रमोद-भवन की भाँति प्रकृति के प्रासाद के द्वार सबके लिए चिर-मुक्त रहें । परिचित, अपरिचित, स्वदेशी, विदेशी सब उसके लिए समान है । मरिता की धारा में प्रत्येक पंछी चोंच डाल सकता है ।

कंचनी—यही तो स्वाभाविक जीवन है ।

वत्स—तुम्हारे विचार में गृहिणी-जीवन से वेश्या-जीवन अधिक स्वाभाविक अतः अधिक आदरणीय है, किंतु क्या समाज में ऐसा होता है ?

कंचनी—समाज का निर्माण स्वार्थ के आधार पर हुआ है । मनुष्य का किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के प्रति आकर्षण अथवा ममत्व होता है—वह उसे पाने को लालायित होता है—पाकर उस पर अधिकार रखना चाहता है और इसके लिए सिद्धांतों, आदर्शों और नियमों का जाल फैलाता है, जिसके अनुसार समाज और सामाजिक नियमों की सृष्टि होती है—किंतु इस प्रकार की व्यवस्थाएँ कृत्रिम हैं—अतः विनाश की ओर ले जाने वाली हैं ।

वत्स—तुम समझती हो कि संसार में सघर्ष की समाप्ति तभी होगी जब मानव पशु की भाँति सामाजिक बंधनों से मुक्त सर्वथा स्वच्छन्द हो जाएगा । न उसकी कोई पत्नी होगी, न संतान, संभवतः उसके

शरीर पर वस्त्र भी नहीं होंगे । किंतु सभ्यता के वस्त्रों को फाड़ कर फेंक देने पर भी दिगंबर स्वच्छन्द पशुत्व की परम सिद्धि प्राप्त करने पर भी मानव संघर्ष-विरत नहीं हो सकता, कंचनी ।

कंचनी—तुम ऐसा क्यों समझते हो वत्स ?

वत्स—इसका उत्तर दो वृषभों का युद्ध है । वृषभ का तर्क उसके सींग है । वह मानव को भी अपने सींगों के तर्क में सीधा कर देता है । वह दिगंबर महामुनि है किंतु उसकी भी कुछ कामनाएँ हैं जिनके लिए वह संघर्ष करता है ।

कंचनी—व्यक्तियों का युद्ध समूहों, समाजों, जातियों और देशों के युद्धों से कम विनाशकारी है ।

वत्स—सभ्यता और संस्कृति के अभाव में मनुष्य एक क्षण भी युद्ध से विश्राम नहीं पा सकता । प्रत्येक क्षण उसे पशुत्व के रक्त-पिपासू सींगों अथवा नखों का प्रयोग करना पड़ेगा । वह व्यक्ति से व्यक्ति का युद्ध होगा—किंतु वह प्रत्येक व्यक्ति से प्रत्येक व्यक्ति का युद्ध होगा । घरा सदा रक्त-रंजित रहेगी । कंचनी, सभ्यता के वस्त्र मानव के युगयुग के अन्वेषण, श्रम और साधना की सिद्धियाँ हैं । मानव दिगंबर बन कर कंगाल हो जाएगा । तब कौन सुनेगा तुम्हारे पायलों की रुनुन भुनुन, कौन सुनेगा मेरी वीणा की भंकार । अज्ञान और पशुता के घनांधकार में कला का प्रकाश विलीन हो जाएगा ।

कंचनी—मानव सभ्य होकर भी प्रतिस्पर्धा-प्रतिहिंसा में मुक्त नहीं हो सकता और असभ्य रहकर भी, तब चिरशान्ति का मार्ग है क्या ?

वत्स—सभ्यता का चरमोत्कर्ष ही मानव का कैलास है जहाँ चिरशान्ति है । सभ्यता का अर्थ प्रकृति के पदार्थों पर अधिकार करने की क्षमता नहीं है—प्रभुता और शक्ति को स्वायत्त करना भी नहीं है—आकांक्षा की मदिग पीकर तांडव करना भी नहीं है ।

कंचनी— तब क्या है ?

वत्स—सभ्यता का अर्थ है चांदनी की भाँति स्वच्छ और शीतल हो जाना ।

चांदनी भी तो तेजोमय है क्योंकि उसका उदगम प्रचंड दिवाकर है, किंतु शशि के हिम-हृदय के स्पर्श से ज्वाला शीतल ज्योत्स्ना बन जाती है । हमें मानव-जीवन का तेज समाप्त नहीं करना है केवल उसे स्निग्ध और शीतल बनाना है । मानव को सभ्य बनाने का कार्य कला और साहित्य का है कंचनी । संसार का भविष्य वत्स और कंचनी के हाथों में है, विष्णुवर्धन और मिहिरकुल के नहीं ।

कंचनी—किंतु

वत्स—(बात काटकर) छोड़ो इस अंतहीन नीरस चर्चा को और तुम्हारे मादक स्वर-निर्भर में मेरे मन-प्राण को स्नान करने दो—ताकि तन-मन में कल शस्त्र चलाने का बल और उत्साह स्फूर्त हो सके ।

कंचनी—यहाँ वीणा तो नहीं है ।

वत्स—तुम्हें वीणा का सहारा चाहिए भी नहीं ।

[वत्स कंचनी की गोद में अपना मस्तक रख देता है । कंचनी उसके बालों पर हाथ फेरती हुई गीत प्रारंभ करती है ।]

कंचनी—(गीत)

हम नदी के दो किनारे,
पास भी हैं, दूर भी हैं ।
बह रही है प्रीत-धारा
युग युगों से पी रहे हम,
तृप्त होगी प्यास इस
विश्वास में ही जी रहे हम ।

स्वप्न निर्मित नित्य होते
नित्य होते चूर भी हैं ।
हम नदी के दो किनारे
पास भी हैं दूर भी हैं ।

दूर रह कर ही जगत को
दे सकेंगे स्नेह-धारा,
इसलिए पाने न देता
चिर-विरहका नभ किनारा ।

कह रहे हम, “घन गगन के
हैं मधुर भी, क्रूर भी हैं।”
हम नदी के दो किनारे
पास भी हैं दूर भी हैं ।

भूमि से नभ के अधर मिलते
मगर हम मिल न पाते,
चाहते हैं पास आना,
पर करें क्या, हिल न पाते ।

चिर-विरह में चिर-मिलन के
ज्वार से भरपूर भी हैं ।
हम नदी के दो किनारे
पास भी हैं, दूर भी हैं ।

[मंदाकिनी का प्रवेश । वत्स का मस्तक कंचनी
की गोद में देखकर उसकी आँखें रोष से रक्त-
वर्ण हो जाती हैं । कंचनी और वत्स उठ खड़े
होते हैं ।]

मंदाकिनी—(व्यंग और तीखेपन के साथ) कंचनी, तुम्हें नींद नहीं
आती ?

कंचनी—नींद तो आपको भी नहीं आ रही ।

मंदाकिनी—इतनी रात बीते एक वेश्या का सैनिक शिविर में विचरण
करना आपत्तिजनक है ।

कंचनी—इतनी रात बीते एक कुमारी का सैनिक शिविर में विच-
रण करना आपत्तिजनक है ।

मंदाकिनी—मैं वहीं आई हूँ जहाँ आने की अनुमति मुझे प्राप्त है ।

कंचनी—और वेश्या को किसी के भी पास जाने की अनुमति प्राप्त है ।

मंदाकिनी—क्या तुम वेश्या हो ?

कंचनी—आपको संदेह है ?

मंदाकिनी—तुम्हें अपने वेश्या होने का प्रमाण देना पड़ेगा ।

कंचनी—क्या ?

मंदाकिनी—तुम्हें मिहिरकुल के पास जाकर उसमें प्रेम-निवेदन करना होगा ।

कंचनी—मैं मिहिरकुल से घृणा करती हूँ ।

मंदाकिनी—वेश्या किसी से प्रेम नहीं करती—किसी से घृणा भी नहीं करती । तुम्हें मिहिरकुल के पास जाना ही होगा ।

वत्स—मंदाकिनी, तुम मुझे दंड दे रही हो ।

मंदाकिनी—तुमने मुझे कम दंड नहीं दिया है । वेश्या होती है क्षण दो क्षण का मनोरंजन और गृहिणी जीवन की सहचरी । मैं वेश्या को सहचरी नहीं बनने दूँगी । यदि वेश्या प्रेम करेगी और प्रेम का प्रतिदान चाहेगी तो मैं तुम्हारे पास से ही नहीं संसार से उसे बिदा कर दूँगी ।

वत्स—ऐसा करके क्या तुम मेरे हृदय को शांति प्रदान करोगी ?

मंदाकिनी—तुमने मेरे हृदय की शांति की बड़ी चिन्ता की है ?

कंचनी—वत्स, तुम्हारी भावी गृहिणी तुम्हारी शांति की चिन्ता करे चाहे न करे लेकिन कंचनी तो करेगी ही । (मंदाकिनी से)मंदाकिनी, कंचनी गृहिणी बनने का स्वप्न नहीं देखती । तुम्हारे भद्र समाज में इतनी उदारता है कहाँ जो वेश्या को गृहिणी बनने का सम्मान पाने दे, वह तो पतित को रसातल में धकेलता है । वत्स, अब मैं जाती हूँ—और मिहिरकुल से मिले बिना आप लोगों को मुँह नहीं दिखाऊँगी ।

[कंचनी का प्रस्थान]

वत्स—कंचनी ! सुनो, मिहिरकुल तुम्हारे प्राणों का ग्राहक है ।

[वत्स कंचनी के पीछे जाता है ।]

मंदाकिनी—वत्स ! सुनो, कंचनी तुम्हारे जीवन की ग्राहक है ।

[मंदाकिनी का वत्स के पीछे प्रस्थान ।]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—दशपुर में वह स्थान जहाँ त्रिष्णुवर्धन (यशोधर्मन) की माता सती हुई थी । समय—संध्या । त्रिष्णुवर्धन एकाकी बैठा हुआ अस्तंगत सूर्य की रश्मियों को देख रहा है । पश्चिमी आकाश में बादल को एक टुकड़ी उड़ती हुई आगई है जो रवि-रश्मियों से रक्त-वर्ण हो गई है ।]

त्रिष्णुवर्धन—अस्तंगत सूर्य की रश्मियों ने मेघ की टुकड़ी को रक्तिम-रंग से रँग दिया है—मानो जाते-जाते भविष्य की सूचना कर रहा हो । अभी धरती और आकाश को रक्त की और भी प्यास है ।

[सुहासिनी का प्रवेश ।]

सुहासिनी—एकांत में विस की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जनेन्द्र !

त्रिष्णुवर्धन—न जाने कितनी अवधि से एकांत मेरी प्रतीक्षा कर रहा था और भीड़ के एकांत से ऊबकर मैं भी एकांत की जननी के समान वात्सल्यपूर्णक गोद में बंठे के लिए व्याकुल था ।

सुहासिनी—भीड़ का भी एकांत होता है ?

त्रिष्णुवर्धन—क्यों नहीं ? विश्व के विपुल जन-समुदाय में जहाँ एक भी प्राणी ममत्व का अंचल फैलाकर उसकी छाया में बैठने का आमंत्रण नहीं देता, जहाँ मनुष्य मनुष्य के हृदय को शरों से क्षत-

विक्षत करता है, जहाँ के कोलाहल के कंठ में स्नेह की स्निग्धता नहीं है, जहाँ प्रभुता, वैभव, विलास एवं ऐश्वर्य जीवन पर लदे हुए शिलाखंड ज्ञात होते हैं वह एकांत से भी—अधिक नीरस है ।

सुहासिनी—ज्ञात होता है नित्यप्रति के रक्त-कांड ने तुम्हें जीवन से विरक्त कर दिया है । किंतु आज तो मालव-जनेन्द्र विष्णुवर्धन ने विश्वविजयी बर्बर दुर्धर्ष हूणों का गर्वोन्मत्त मस्तक चूर्ण कर दिया है । मिहिरकुल अपनी अवशेष सेना को, जिसे सेना कहना भी उप-युक्त नहीं, लेकर उत्तर-पश्चिम की दिशा में प्रयाण कर गया है । आज तो मालवों की इस महान विजय पर तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए । आज मालव-प्रदेश के प्रत्येक भवन में, प्रत्येक कुटी में दीप-माला जलाने की आज्ञा देनी चाहिए ।

विष्णुवर्धन—दीप-माला जलाने की आज्ञा देनी नहीं पड़ती, सुहासिनी ! जब मधुमास आता है वन-उपवन में राशि-राशि पुष्प खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं और पतझड़ में प्रयत्न करने पर भी प्रकृति के अधरों पर एक क्षीण-सी मुसकान की रेखा भी नहीं खिचती । मानव-हृदय में जब आनंद क्रीड़ा करता है तब अपने आप दीपमालाएँ सँजोई जाती हैं—तब अपने आप ही आनन्द प्रकाशित हो उठता है ।

सुहासिनी—क्या स्वाधीनता की प्राप्ति आनन्द का ज्वार लाने के लिए पर्याप्त कारण नहीं है ?

विष्णुवर्धन—स्वाधीनता की प्राप्ति आनन्द का विषय अवश्य है, सुहासिन ! क्योंकि उसकी साधना में बलिदान करना पड़ता है । प्राणों की बलि देने पर स्वाधीनता की प्राप्ति होती है तभी वह प्राणों से भी अधिक प्रिय है । तुम तो जानती हो, सुहासिन, हमारे देश में जब शस्य परिपक्व होता है तब हम होलिका का त्यौहार मनाते हैं । छोटे-बड़े, धनी-निर्धन का भेद-भाव भूलकर एक रूप हो जाते हैं—नाचते हैं—गाते हैं—परस्पर रंग डालते हैं—यह सब

किस लिए ! इसलिए न कि हमारे कठिन परिश्रम के अंकुर फल लाते हैं ।

सुहासिनी—आज हमारी स्वाधीनता की खेती फली है, तो क्या हमें आनंद से उन्मत्त नहीं हो उठना चाहिए ?

विष्णुवर्धन—क्यों नहीं ? आकाश से जलदों ने इतना जल नहीं बरसाया होगा जितना मालव-ग्रसि ने हूणों का रक्त मालवप्रदेश के काले-काले खेतों में सींचा है, हूणों का ही नहीं स्वयं मालवों का भी । सहस्रों नरमुंडों को बीज की भाँति खेतों में बो दिया जाता है, तब स्वाधीनता के दुर्लभ शस्य को लहराते हुए हम देखते हैं । आज प्रत्येक मालव-भवन और मालव-कुटी में मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा किए बिना भी दीप जलेंगे, सुहासिनी ! तब दीपमाला के प्रकाश में माताएँ देखेंगी—आज उनके घर में उनके लाड़ले पुत्र नहीं हैं, बहनें देखेंगी उनके भाई नहीं हैं, पत्नियाँ देखेंगी उनके मस्तक का सिंदूर पुछ गया है—तब क्या दीपकों की आँखों में जल नहीं भर आएगा ।

[विष्णुवर्धन की आँखें सजल हो उठती हैं ।]

सुहासिनी—तुम्हारी जिन आँखों में ज्वालामुखी जलता था आज उनमें सावन के मेघ छा गए हैं ।

विष्णुवर्धन—मेरा बस चलता तो विश्वभर के सारे बादल अपनी आँखों में भर लेता और मालवभूमि पर बरसा कर रक्त के धब्बों को धो डालता । प्रत्येक घर में अनगिनती आँखों को अश्रु-वर्षा नहीं करनी पड़ती । मैं सबका प्रतिनिधि हूँ, मैं उन सबके लिए रो लेता । सबकी आँखों में आँसू भर देना मेरे लिए संभव था किंतु सबकी आँखों के अश्रु पोंछने के लिए उतने हाथ कहाँ से पाऊँगा ।

[बाळ खोले हुए विचित्र सी उमा का प्रवेश ।]

उमा—वह स्वर्ग द्वार पर खड़े मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं और मैं अभी

तक यहाँ इस कठोर पृथ्वी पर खड़ी हूँ । शीघ्र तैयार करो मेरा रथ—अग्नि-रथ । मैं जाऊँगी—अपने प्रिय के पास । मैं जाऊँगी ।

सुहासिनी—उमा, क्या हुआ ?

उमा—कुछ नहीं, सुहासिनी, वह मुझे अकेला छोड़कर चले गये । शत्रु-शवों की शैया बिछाकर अनंत निद्रा में लीन होगए । स्वतंत्रता के महायज्ञ में उन्होंने अपनी आहुति दे दी ।

विष्णुवर्धन—(उठकर उमा के मस्तक पर हाथ रखकर) तो बहिन, तुम्हें अपने सौभाग्य पर गर्व होना चाहिए । मनुष्य को एक दिन इस संसार से बिदा होना ही पड़ता है । घर में लंबी अवधि तक शैया पर पड़े रह कर परिजनों को दुखी करते हुए मरने से रणक्षेत्र में प्राण देना श्रेष्ठ है । क्षत्रियों को यही मृत्यु शोभा देती है । तुम्हें दुखी नहीं होना चाहिए, उमा !

उमा—मैं दुखी नहीं हूँ, जनेन्द्र ! मुझे गर्व रहा है अपने पति के जीवन पर, मुझे गर्व है उनकी मृत्यु पर भी । आपने उनकी रणक्षेत्र में सदा हरावल में रहने की आकांक्षा की पूर्ति की, मुझे विश्वास है कि मेरी आकांक्षा की भी आप पूर्ति करेंगे ।

विष्णुवर्धन—ऐसी कौनसी वस्तु है जो मेरे पास है और मैं तुम्हें दे नहीं सकता । तुम आज्ञा दो तो तुम्हारे पुत्र को अपना उत्तराधिकारी, मालव प्रदेश का भावी जनेन्द्र घोषित कर दूँ ।

उमा—मुझे अपने पुत्र की चिंता नहीं है । यदि उसमें उस महान् व्यक्तित्व का अंश है जो अपने देश के प्रति सदा विश्वास-पात्र रहा, जो देश के लिए जिया और देश के लिए ही मरा—तो मैं समझती हूँ, वह चाहे कितनी ही विपरीत परिस्थितियों में पले—वह कुछ नहीं तो एक सच्चा सैनिक या सच्चा कृषक तो बन ही सकेगा ।

सुहासिनी—तब तुम क्या चाहती हो, वहन !

उमा—इस समय हम मालव-प्रदेश के उद्धारक जनेन्द्र विष्णुवर्धन की

महाप्राण महासती—माताजी—की समाधि के पास खड़े हैं। मैं उन्हीं के बनाए हुए पथ पर अग्रसर होना चाहती हूँ। माताजी के पास ही मेरे लिए भी चिता का निर्माण करा दीजिए।

विष्णुवर्धन—यह तो जीवन के उत्तरदायित्व से विमुख होना है, बहिन !

उमा—यही बात, आप माताजी से क्यों न कह न सके ?

विष्णुवर्धन—क्योंकि वह माँ थीं, मैं उनकी गोद में पला था, मैं उनसे अधिक विवेक रखता हूँ इस बात को वह मान नहीं सकती थीं।

सुहासिनी—और वह जिन संस्कारों में पलकर बड़ी हुई थी उन पर नए युग का तर्क चल ही नहीं सकता था। मैं तो कहती हूँ यदि पुरुष पत्नी के निधन पर उसके साथ चिता में नहीं जलता तो नारी ही क्यों जले ? सनी महादेव शंकर को कितना प्यार करती थीं—कि अपने पिता दक्ष-द्वारा उनका अपमान किए जाने पर प्रज्वलित यज्ञ-कुंड में कूद कर उन्होंने प्राण दे दिए—और शंकर उनके वियोग में चाहे कितने ही विह्वल हुए किन्तु प्राण नहीं दे सके।

उमा—पति ही नारी के जीवन की गति है। पति के जीवन का पूर्ण-विराम होने पर नारी-जीवन का भी पूर्णविराम हो जाना आवश्यक है।

सुहासिनी—ऐसा होता तो पति के स्वर्गवास के साथ ही- पत्नी की हृदय-गति स्वतः निस्पंद हो जाती। पति से प्रेम करने का यह अर्थ नहीं कि संसार के प्रति अपने कर्तव्य को हम भूल जावें। केवल पति से प्यार करना ही तुम्हारा कर्तव्य था तब क्यों धनुष-बाण लेकर तुम रणक्षेत्र में गई थीं। पत्नियों को पतियों की परिचारिकाएँ बनाए रखकर समाज ने इन्हें दुर्बल बनाया है, अन्यथा नारी अबला नहीं है। वह पुरुष से बल्लरी की भाँति लिपट कर रहने के लिए नहीं है। उसे स्वतः अपने बल पर भी खड़ा होना चाहिए।

उमा—किंतु वह मुझे बुला रहे हैं। उनकी आत्मा को.....

सुहासिनी—मृत्यु के बाद कौन किसे बुलाता है, बहिन ! संसार के नाते संसार में ही रह जाते हैं । मनुष्य मरकर मनुष्य योनि में ही जाता है यह भी तो हमें ज्ञात नहीं । तब तुम मर कर अपने स्वामी को पा सकोगी इसका भी तो विश्वास नहीं । मैं जानती हूँ—हमारा समाज, पति की मृत्यु के पश्चात् जीवित रहने वाली नारी की उपेक्षा करता है, किंतु एक निर्दय परिपाटी से पराजय मान लेने की अपेक्षा समाज के व्यंग-बाण सहते हुए युद्ध करना अधिक वीरता का कार्य है ।

विष्णुवर्धन—उमा वीरागना है । वह समाज से नहीं डरेगी । उसने सैकड़ों हूणों के वक्षस्थलों को क्षत-विक्षत किया है । उसने शत्रु द्वारा की जाने वाली शर-वर्षा में भी-धैर्य नहीं छोड़ा—वह क्या विचलित हो जायगी । वह माँ भी है—ऐसी माँ जिसकी गोद में नन्हा शिशु है—क्या वह उसे निर्दयता से पृथ्वी पर पटक कर चली जाएगी ?

[उमा चुप रहती है । वत्स और हेमचंद्र का प्रवेश]

वत्स—सुहासिनी !

सुहासिनी—रुहिए, कवि-सम्राट !

वत्स—प्रापके बन्धु मालव नरेश धन्यविष्णु का.....

सुहासिनी—शव रण-क्षेत्र में प्राप्त हुआ है—यही कहना चाहते हो तुम ।

वत्स—तो आप जानती है ?

सुहासिनी—हाँ, जानती हूँ और मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि मेरे धनुष में छूटे हुए शर ने ही उनके प्राण लिए हैं ।

विष्णुवर्धन—अपने अग्रज पर शस्त्र संचालित करते हुए तुम्हारे हाथ काँपे नहीं !

सुहासिनी—रणक्षेत्र में न कोई बंधु है, न कोई बहिन । वहाँ शत्रु के

सामने शत्रु खड़ा होता है । मैंने अपने अग्रज का बध नहीं किया, उसने तो स्वयं उस दिन आत्म-हत्या करली जिस दिन मालव-नरेश बनने के मोह में उसने हूणों का आधिपत्य स्वीकार किया । मैंने तो एक देशद्रोही नरेश की हत्या की है—मुझे अपने इस पुण्य-कार्य के लिए गर्व है ।

वत्स—अद्भुत हैं आप !

सुहासिनी—अद्भुत हो तुम, वत्स ! जो एक देशद्रोही की मृत्यु पर मेरी आँखों में अश्रु देखना चाहते हो । यह सत्य है कि बचपन में मुझे अपने भाई से इतना प्रेम था कि जब तक वह मेरी थाली में भोजन न करें मैं भी भोजन ग्रहण नहीं करती थी । हम दो तन और एक प्राण थे। एक ही डाल में खिले हुए दो पुष्प समय की आँधी में उड़ कर दो दिशाओं में जा पड़े । एक-दूसरे के लिए शूल बन गए । वह केवल मेरे लिए ही शूल बनता तो मैं उसके नहीं अपने प्राण लेती—किंतु जब वह देश का शूल बन गया तो मुझे उसके प्राण लेने पड़े । वत्स, धन्यविष्णु की मृत्यु पर तनिक भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है । उनकी लाश से चील-कौओं और शृगालों की उदर-ज्वाला शांत होने दो ।

विष्णुवर्धन—छिः नारी होकर ऐसी कठोर, निर्दय बात मुँह से निकालती हो । वत्स, महाराज धन्यविष्णु के शव का आदरपूर्वक दाह-संस्कार करने का प्रबंध करो । उनके कलंकपूर्ण कार्य उनके साथ चले गए ।

सुहासिनी—साथ चले गए । क्या साथ गया ? इतने मालव-नर-मुंडों की बलि इस निर्दय, निर्लज्ज व्यक्ति ने ले ली कि आज मालव प्रदेश में स्त्रियों को हल चलाने पड़ रहे हैं । जिस व्यक्ति में इतना भी अहं नहीं था कि अपनी सहोदरा पर वासनापूर्ण दृष्टि डालने वाली आँखों को बाहर निकाल ले—वह मनुष्य था ही कब ! ऐसे व्यक्ति का आदर कैसा !

विष्णुवर्धन—शांत, सुहासिन, शांत ! मैं जानता हूँ—यह तुम्हारा क्रोध नहीं, घृणा नहीं, तुम्हारा अपने अग्रज के प्रति प्रेम बोल रहा है। मैं तुम्हारी निराशा को समझता हूँ। मैं भी धन्यविष्णु प्रमाणित होता तो संभवतः मंदाकिनी भी यही कहती, किंतु हम यह नहीं भूल सकते कि एक के अच्छे और एक के बुरे हो जाने पर रक्त का संबंध टूटता नहीं है। तुम अपने भाई को महान व्यक्ति, वीर-शिरोमणि, यशस्वी देखना चाहती थी—क्योंकि तुम उसे बहुत प्यार करती हो—तुम्हारी आशा पूर्ण नहीं हुई तब तुम्हारा प्रेम क्रोध बन गया। तुम्हारी आँखों में चिनगारी है किंतु तुम्हारे हृदय में आँसुओं का समुद्र है। इसे संसार चाहे न जाने किंतु विष्णुवर्धन तो जानता है। वत्स, मेरे आदेश का पालन करो।

वत्स—आपकी आज्ञा का पालन होगा।

हेमचंद्र—मुझे भी कुछ निवेदन करना है।

विष्णु—आज्ञा कीजिए।

हेमचंद्र—दशपुर के नागरिक विजयोत्सव मनाना चाहते हैं।

विष्णु—अभी युद्ध समाप्त नहीं हुआ।

हेमचंद्र—यह आप क्या कहते हैं ?

विष्णु—हाँ ठीक कहता हूँ। शत्रु मालव-सीमा से चला गया है किंतु उसने विजय-लालसा का त्याग कर दिया ऐसा नहीं मानना चाहिए। हूण भारत से स्कंदगुप्त के काल से टकरा रहे हैं। अस्थायी विजय-पराजय से कुछ नहीं होता। हमें शत्रु का पीछा करना पड़ेगा—सर्प को चोट खाकर भाग जाने देना उचित नहीं है। उसके फन को पूर्ण रूप से मर्दित कर उसे सर्वथा निर्जीव कर देना ही उचित है।

हेमचंद्र—तब फिर युद्ध का एक नया परिच्छेद प्रारंभ होगा। किंतु क्या मालव-प्रदेश में अब लड़ने की जान शेष है ?

विष्णु—श्रेष्ठी हेमचंद्र जी ! साहस का नाम ही जीवन है। साहस ही शक्ति है। हूणों को पराजित कर मालव योद्धा यम के अवतार बन

गए हैं। और अब भावी युद्ध का संपूर्ण भार मालवों को ही नहीं उठाना पड़ेगा।

हेमचन्द्र—तब ?

विष्णु—उदयोन्मुख सूर्य को सभी नमस्कार करते हैं, श्रेष्ठी। अब विष्णु के आदेश से भारत भर के नरेश धन-जन से हूणों के विरुद्ध सहायता देंगे।

सुहासिनी—क्या आज यहीं राज सभा जमेगी।

विष्णु—मैं तो भूल ही गया था कि मेरा कोई घर है—इसीलिए यहाँ—माँ के पास आ बैठा था। तो माँ, अब मैं जाता हूँ। मैंने शपथ ली थी कि हूणों से भारतभूमि को मुक्त करूँगा—उस शपथ की आंशिक पूर्ति हो गई है। मुझ आशीर्वाद दो कि शेष अंश की पूर्ति भी मैं कर सकूँ। (उमा से) चलो उमा ! तुम मेरी माँ की तरह अपने पुत्र के पास से भाग न सकोगी। अभी तो युद्ध समाप्त नहीं हुआ। मेरे पास सैनिकों का अभाव है—मैं तुम्हें कैसे गँवा दूँ।

[उमा की आँखों में आँसू आ जाते हैं ।]

विष्णुवर्धन—तुम्हारे प्राणों की ज्वाला पानी बनकर आँखों में आ गई। अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम हमारा साथ नहीं छोड़ोगी। चलो मेरे साथ।

[सबका प्रस्थान ।]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[स्थान—वितस्ता का तट। समय—रात्रिका प्रारम्भ। मिहिर-कुल रत्न रंजित वस्त्र पहने, आहत और आत-बलान्त आता है। आगे चलने में कष्ट अनुभव कर एक वृक्ष के तने से टिक कर बैठ जाता है। इसी समय कंचनी ठीक उसी वेश-भूषा में, जिसमें एरण के सैनिक शिविर में मिहिरकुल के पास गई

थी, आती है और जिस वृक्ष के आश्रय से मिहिरकुल बैठा है उसी के पीछे आँख बचाकर जा खड़ी होती है ।]

कंचनी—(खिलखिला कर हँसती है) हः हः हः !

मिहिर—मेरे जीवन में इस समय मृत्यु के अतिरिक्त और कौन आ सकता है—किंतु क्या मृत्यु का स्वर इतना मधुर है ? ऐ विश्व-विजयी मिहिरकुल का उपहास करने वाले मधुर स्वर सामने आ ।

कंचनी—आती हूँ ! मैं उन समस्त भारतीय नारियों का सम्मिलित स्वर हूँ जिन्हें हूण सैनिकों की उन्मत्त लालसाने लाँछित किया है ।

[कंचनी मिहिरकुल के सम्मुख आती है ।]

मिहिरकुल—कंचनी ! पिता जी की हत्यारिन, कंचनी !

कंचनी—यदि छुरी से कंचनी हूण-सम्राट के प्राण ले ले, तो हत्यारिन कंचनी होगी या छुरी ? न्याय प्राण-दंड कंचनी को देगा या छुरी को ?

मिहिरकुल—कंचनी को ।

कंचनी—तब सम्राट तोरमाण की हत्या का आरोप छुरी पर क्यों लगाया जाता है । कंचनी तो हत्यारे का शस्त्र थी ।

मिहिरकुल—यह अभिनय मेरे सम्मुख मत करो, कंचनी ! तुम किसी का शस्त्र बनने वाली निष्प्राण वस्तु नहीं हो ।

कंचनी—जो अपनी इच्छा का स्वामी नहीं, अपने जीवन का स्वामी नहीं, वह निर्जीव नहीं तो क्या है ।

मिहिरकुल—मनुष्य हिमगिरि को उठाकर भारतीय महासागर में रख दे सकता है किंतु कंचनी को अपनी इच्छा के अनुसार नहीं चला सकता ।

कंचनी—सम्राट के इस विश्वास का कारण ?

मिहिरकुल—एरण के सैनिक शिविर में जब मैं तुम्हारे मादक नृत्य को पूरा न देख कर गजों के चिंघाड़ का भीषण रव सुनने को लालायित हो उठा था तब मैंने तुम्हारी आहत सर्पिणी-सी आँखों में कुछ

चमकते हुए अक्षर पढ़े थे ।

कंचनी—क्या कहते थे वे अक्षर ?

मिहिरकुल—यही कि रूप-गविता नारी किसी दिन निद्रितावस्था में मुझे इसेगी । मेरे प्राण लेगी ।

कंचनी—क्या समय ने मिहिरकुल को कभी सोते देखा है ?

मिहिरकुल—दिन और रात्रि की भाँति जाग्रति और निद्रा का मनुष्य के जीवन में आगमन होता है ।

कंचनी—मनुष्य के जीवन में ! किंतु जो मनुष्य नहीं, हिंसा का स्वरूप है उसकी काया चाहे मूर्छित हो जाए किंतु उसके हृदय में फुफुकारने वाली हिंसा तो चिर-जाग्रत, चिर-चैतन्य, चिर-गतिवान रहती है । हिंसा प्रेतनी कभी नहीं सोती ।

मिहिरकुल—एक और भी प्रेत है जो नहीं सोता ।

कंचनी—कौन-सा प्रेत ?

मिहिरकुल—प्रेम । प्रेम भी चिर-जाग्रत रहता है, मानव की मृत्यु के पश्चात् भी उसका प्रेम जाग्रत, जीवित रहता है ।

मिहिरकुल—क्या एक हत्यारा, विश्व-शांति को हरण करने वाला दस्यु संसार को श्मशान बनाने का इच्छुक पिशाच भी प्रेम की चर्चा कर सकता है ?

मिहिरकुल—जब वेश्या प्रेम की चर्चा कर सकती है तो हत्यारा और डाकू क्यों नहीं ?

कंचनी—तुमने देखा है कहीं प्रेम ?

मिहिरकुल—प्रेम का अंतहीन सागर देखा है ।

कंचनी—कहाँ काश्मीर की राजकुमारी की आँखों में !

मिहिरकुल—छिः, वह बेचारी तो काश्मीर के हिम के समान शीतल है ।

कंचनी—उसका श्वास काश्मीर के केशर के समान सुगंधित होगा ।

मिहिरकुल—हाँ, काश्मीर के केशर के बागने ही तो मुझे खींच लिया अपने पास ।

कंचनी—और तुम घुस गए केशर के उपवन में साँप की भाँति ।

मिहिरकुल—राजकुमारी ने साँप को ही स्वर्ग के देवता के रूप में देखा और उसे वरमाला पहना दी ।

कंचनी—और तब साँपने राजकुमारी के पिता काश्मीर नरेश को डस लिया और स्वयं काश्मीर का राजा बन बैठा । राजकुमारी को महारानी बना लिया ।

मिहिरकुल—किंतु राजकुमारी पदोन्नति से प्रसन्न नहीं हुई—वह अपने पिता के हत्यारे से धृणा करती है ।

कंचनी—यह तो ठीक नहीं हुआ ।

मिहिरकुल—ठीक क्यों नहीं हुआ ? राजकुमारी से विवाह तो एक राजनीतिक व्यवसाय था । काश्मीर-नरेशका विश्वास पाने के लिए मैंने शैवमत को भी अंगीकार किया । काश्मीर-नरेश इस व्यवसाय में घाटा खा बैठे, मिहिरकुल को काश्मीर की राजकुमारी का प्रेम नहीं, उसका राज्य चाहिए था सो उसे प्राप्त हो गया ।

कंचनी—तब तुमने राजकुमारी की आँखों में प्रेम नहीं देखा ।

मिहिरकुल—नहीं देखा ।

कंचनी—तब कहाँ देखा ?

मिहिरकुल—कंचनी के क्रोध-ज्वलित लोचनों में ।

कंचनी—प्रेम, किसके प्रति ?

मिहिरकुल—प्रेम मिहिरकुल के प्रति । निर्दय, नृशंस, बज्र से भी कठोर मिहिरकुल के प्रति !

कंचनी—प्रेम या प्रतिहिंसा ?

मिहिरकुल—प्रतिहिंसा तो केवल प्रीति का घूँघट थी । मेरी सुतीक्ष्ण दृष्टि ने प्रतिहिंसा की लोहित घटाओं में अंतर्निहित प्रीति के शशि को मुसकुराते हुए देख लिया था । जानता था तुम एक दिन आओगी । आओ—पास आओ—नहीं आओगी—तो मैं तुम्हें पकड़ लाऊँगा ।

[मिहिरकुल उठना चाहता है किन्तु उठने में कुछ कष्ट होता है—यह देखकर कंचनी स्वयं उसके पास पहुँचती है। और उसे आश्रय देती है।]

कंचनी—मैं जानती थी, तुम्हारे जीवन में वह घड़ी भी आएगी जब तुम आश्रय की आकांक्षा करोगे।

[मिहिरकुल कंचनी की गोद में अपना मस्तक रख देता है।]

मिहिरकुल—स्नेहमयी, तुमने पिताजी को मार डाला, अब मुझे भी मार डालो।

कंचनी—तुमने अभी तो कहा था कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। यदि प्यार करती हूँ तो क्या तुम्हें मार सकूंगी ?

मिहिरकुल—मार डालो तो प्रत्येक क्षण की मरण-यंत्रणा से बचालो, कंचनी !

कंचनी—रावण की भाँति तुमने अग्नि, जल, थल, वायु, आकाश सभी तत्वों को अपना दास बनाया—अब मरण की कामना क्यों करते हो, महाप्राण ?

मिहिरकुल—तृष्णा के तप्त तवे पर प्राप्तियों के जलबिन्दु जलकर वाष्प बन गए, कंचनी ! मेरे सम्मुख सहस्रों नारियों के पद-नूपुर मुखरित हुए किन्तु किसी ने मेरे मन में एक भी तरंग नहीं उठाई—केवल तुम (चुप रह जाता है।)

कंचनी—तुमने विश्वामित्र की भाँति अपना स्वर्ग बनाना चाहा जिसमें न प्रेम हो, न सौंदर्य हो, न कला हो।

मिहिरकुल—किन्तु मेरी मेनका, तुमने मेरा तप भंग कर दिया। मेरे चट्टान जैसे वक्षस्थल को अपने नृत्य के अंग-विक्षेपों के हथौड़ों से विदीर्ण कर दिया। मैं डर गया अपनी दुर्बलता से। भाग गया गजों का चिंघाड़ सुनने के मिस। भारत में वह मेरी प्रथम पराजय

थी । रूप और यौवन का मैंने इस प्रकार उपभोग किया है जैसे सिंह बलवान जबड़ों से मृग के मस्तक को चबाता है—किंतु जब तुम सामने आईं तो एक बार तो मेरी सर्वभक्षी वासना तीव्र हो उठी किंतु दूसरे ही क्षण वह परास्त होगई । मैं तुम्हारे साथ खेल नहीं कर सका । तुम्हारी मधुर चितवन ने भीतर ही भीतर मेरी कठोरता को क्षत-विक्षत कर दिया । तुम्हारा नृत्य मेरी हिंसक वृत्ति को मूर्छित करने लगा—तुम्हारे गान के बाण ने मेरे गर्व का कलेजा चीर दिया—तभी पर्वत से गिरने वाले गज के चिंघाड़ ने मुझे स्वप्न-जगत से बाहर खींच लिया—और मैं भाग खड़ा हुआ ।

कंचनी—क्या तुम सत्य कह रहे हो, मिहिरकुल !

[मिहिरकुल मस्तक से राजमुकुट उतार कर
कंचनी के चरणों के पास रख देता है ।]

मिहिरकुल—मिहिरकुल के मस्तक का राजमुकुट किसी राजपुरुष के प्रयास से मेरे जीवित रहते किसी के चरणों पर भुक नहीं सकता—वह आज तुम्हारे चरण-कमलों के पास रखा है । मैं असत्य भाषण नहीं कर रहा ।

कंचनी—तब कितनी भयानक भूल हुई मुझसे । मैंने जिसे अपनी प्रथम पराजय माना वह मेरी प्रथम वास्तविक विजय थी ।

मिहिरकुल—तुम्हारे रूप-यौवन और उन्मादमयी कला के सघे हुए शरों के क्षेत्र से बाहर हो जाना मेरे जीवन का प्रथम विवेक था । विश्व-विजय का आकांक्षी योद्धा नारी-रूप के पिंजरे में पालतू पंछी बन कर बैठ जाए तो समझो वह अपने ही हाथ से अपनी आकांक्षाओं के भव्य भवन को धराशायी करता है । मैं किसी भारतीय नारी के प्रेम-पाश में नहीं बँधना चाहता था ।

कंचनी—और कंचनी की कोमलता को प्रथम बार एक निर्मम-तम व्यक्तित्व ने अज्ञात ही जकड़ लिया था । मैं मन ही मन बल्लरी

की भाँति उसके सुदृढ़ पुरुषत्व-नरु से लिपट गई किन्तु जिसे मैंने वृक्ष समझा वह उन्मत्ता गज की भाँति वल्लरी का बंधन तोड़ता हुआ भाग गया ।

मिहिरकुल—क्या सचमुच मुझे प्यार करने की अभिलाषा से तुम मेरे सैनिक-शिविर में आई थीं ।

कंचनी—यह तो मैं नहीं जानती, किन्तु इतना जानती हूँ कि केवल महाराज धन्यविष्णु का आग्रह मुझे नहीं लाया था । एक कुतूहल के, एक अज्ञात प्रेरणा के वश मैं चली आई । मिहिरकुल के अत्याचारों की कहानियाँ कंचनी के कानों में पड़ी थीं—उसका हृदय उसके प्रति कठोर हो गया था । वह उससे घृणा करने लगी थी—किन्तु कब यह घृणा आकर्षण बन गई, कब आकर्षण में प्रीत के कीटाणु जन्मे वह कुछ नहीं जान पाई ।

मिहिरकुल—और तुम उत्तम होकर मुझपर अनंग के दिव्यास्त्र अनवरत छोड़ने लगीं—और मुझे मैदान छोड़कर भागना पड़ा ।

कंचनी—तुमने मुझमें पुरुष की वास्तविक व्यास जाग्रत कर दी । अनेक पुरुष मेरे कला-भवन में आए और गए—किन्तु मैंने उन्हें कठपुतलों से अधिक कुछ नहीं समझा । मैं भी कठपुतली की ही भाँति उनके साथ नाची, प्रीत का अभिनय किया, किन्तु तुम्हें देखने के बाद मेरे तन-मन-प्राण, तृष्णा से जल उठे । बिना बरसे बादल की भाँति तुम उड़ गए—तभी मेरे जीवन से एक और युवक आया जो मेरे ही समान संगीत-कला में पारंगत था—मैं तुमसे ठोकर खाकर पूरे वेग से उसकी गोद में जा गिरी ।

मिहिरकुल—आज मैं तुम्हें अपने बाहु-पाश में बाँधने को प्रस्तुत हूँ कंचनी ! मेरी जननी शिशुत्व में ही मुझे कठोर पृथ्वी पर पटक गई, मेरे पिता ने गोद में बिठाने के स्थान पर अश्व की पीठ पर सवार रखा—मैंने अपने जीवन में सदा तड़पते हुए शव, रक्त के सागर और नगर-ग्रामों को भस्म करने वाली लपटें ही देखी हैं ।

अब मेरा प्यासा हृदय स्नेह की सुरा पीना चाहता है ।

कंचनी—मिहिरकुल ! तुम्हारे हृदय में चम्पा की गंध से अधिक तीव्र इस देश पर राज्य करने की इच्छा है जिसकी मिट्टी से मेरा तन बना है । तुम मेरे लिए चम्पा के फूल हो—मैं तुम्हारे लिए ।

मिहिरकुल—भारत पर राज्य करने की लालसा मेरी पूरी नहीं होगी । विष्णुवर्धन के हाथों में भारत का सम्मान सुरक्षित है । मालव-प्रदेश से उसने मुझे निर्वासित कर दिया । यहाँ भी मुठभेड़ में हमें पराजित होना पड़ा है—अंत का प्रारंभ प्रारंभ होगया है—अंत दूर नहीं है कंचनी ! मैं चाहता हूँ सब कुछ गँवाकर—अब मनुष्य बन जाऊँ—तुम मुझे मनुष्य बना दो ।

कंचनी—मैं मिहिरकुल के उस तेज को प्यार करती हूँ जो सम्राट बनना चाहता है ।

मिहिरकुल—तो तुम जाओ ! जिस दिन मिहिरकुल सम्राट बन जाएगा, तुम्हें बुला लेगा ।

कंचनी—जाती हूँ किंतु जानते हो वेश्या लोभिन होती है—स्मृति-चिन्ह के नाम से आपसे कुछ भटकना चाहनी है ।

[मिहिरकुल एक मुद्रिका देता है ।]

मिहिरकुल—लो, इस पर मेरा नाम अंकित है ।

कंचनी—धन्यवाद ।

[कंचनी मुद्रिका लेकर उठती है—और मिहिर-

कुल भी कंचनी के सहारे से उठता है ।]

कंचनी—अपने शिविर तक पहुँच जाओगे ?

मिहिरकुल—हाँ, पहुँच जाऊँगा । किंतु तुम्हें सावधानी से जाना होगा ।

कंचनी—नारी के समान कायर और नारी के समान दुस्साहसी कोई नहीं होता । विश्वास रखिए—मैं भी पहुँच जाऊँगी ।

[दोनों का दो तरफ प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—वह मैदान जहाँ पर विष्णुवर्धन (यशोधर्मन) की माता सती हुई थी। समय—सन्ध्या के कुछ पश्चात्। मैदान में जाजमों और कालीनों की बिछात की गई है। सबसे पिछले भाग में बहुमूल्य कालीनों पर मसंद रखे हुए हैं। एक पार्श्व में एक ऊँचा स्तम्भ खड़ा है जिसका शीर्ष दर्शकों को दिखाई नहीं देता। स्तम्भ लाल कपड़े से ढका हुआ है। मंदाकिनी, वत्स और हेमचन्द्र का प्रवेश। तीनों सुन्दरतम वस्त्रालंकारों से सुसज्जित हैं और बहुत ही प्रसन्न मुद्रा में हैं।]

हेमचन्द्र—मैं तो जानता था कि हूण-शक्ति का सूर्य सदा के लिए अस्त हो जाएगा। इसीलिए मैंने विष्णुवर्धन के यश को गुग-युग तक प्रकाशित रखने के लिए इस कीर्ति-स्तम्भ का निर्माण करा दिया है।

वत्स—संयोग तो देखो, श्रेष्ठी महोदय ! जिस वितस्ता के तट पर किसी समय अजेय विदेशी शक्ति यूनानियों ने अलक्षेन्द्र के नेतृत्व में एक भारतीय नरेश पुरु को पराजित किया था उसी तट पर यूनानियों से अधिक दुर्धर्षशक्ति हूणों को भारत की जनता ने सदा के लिए धूल में मिला दिया।

मंदाकिनी—कितनी प्रसन्नता की बात है कि हूणों के विरुद्ध हमारे अंतिम संघर्ष में न केवल मालव योद्धाओं को ही अपने प्राणों पर खेलना पड़ा, अपितु उत्तरापथ के सभी राजाओं और गण-तन्त्रों एवं दक्षिणापथ के अनेक महीपों ने स्वेच्छा से अपने सैनिक भेजे जो पूर्ण अनुशासन के साथ जनेन्द्र के नेतृत्व में शत्रु से लड़े।

वत्स—ऐसा नहीं होता तो क्या मालव हूण-शक्ति को भारत से निर्मूल कर पाते। मालव प्रदेश से उखाड़ फेंके जाने पर मिहिरकुल ने

कुत्सित षडयन्त्र द्वारा काश्मीर नरेश को मारकर काश्मीर पर तो अधिकार करही लिया था, उसे और अवकाश मिल जाता और हम उसे सीमांत पर जाकर न धर दबाते तो भारत के भाग्याकाश में फिर काली घटाएँ छा जातीं ।

हेमचन्द्र—जनेन्द्र विष्णुवर्धन विदेशी सत्ता से भारत को मुक्त करने की इच्छा से सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में ग्रथित कर सके किंतु क्या शांति-काल में यह एकता स्थिर रह सकेगी ।

वत्स—जब तक देश के कुछ प्रदेशों में कुछ नृपतिगण अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाएँ हृदय में पाले हुए शोभायमान हैं और कुछ प्रदेशों में छोटे-छोटे गणतन्त्र सिसकते हुए सांस ले रहे हैं तब तक पारस्परिक संघर्ष का अंत नहीं आएगा और आए दिन उत्तर पश्चिम से विदेशियों की काली घटाएँ हमारी सुख-शांति और स्वाधीनता की खेती पर ओले बरसाती ही रहेंगी ।

[विष्णुवर्धन और सुहासिनी का प्रवेश ।

हेमचन्द्र और वत्स नियमपूर्वक नमस्कार करते हैं ।]

सुहासिनी—उत्सव का आयोजन तो ठीक-ठीक हो गया है न ?

हेमचन्द्र—विजयोत्सव का आयोजन कोई महायुद्ध का आयोजन तो है नहीं, जिसमें बहुत सोच-विचार करना पड़े । जन-मन में स्वयं ही उत्साह का समुद्र लहरा रहा है—वह अपने उद्धारक, भाग्य-विधाता जनेन्द्र के दर्शन करना चाहते हैं और श्रद्धा की पुष्पांजलि चढ़ाना चाहते हैं ।

विष्णुवर्धन—यह लाल वस्त्र के आवरण में क्या है ?

हेमचन्द्र—जनता की अपने जनेन्द्र के प्रति जो श्रद्धा है वह इस कीर्ति-स्तंभ के रूप में प्रकट हो गई है । आप उधर युद्ध में प्राणों की बाजी लगाए हुए थे इधर हम लोगों ने इस कीर्ति स्तंभ की रचना कर डाली । कवि शिरोमणि वत्सभट्ट ने युद्ध से लौटने पर एक

प्रशस्ति लिख दी जो इस पर अंकित कर दी गई है । आज आपके ही कर-कमलों से इसका अनावरण होगा ।

विष्णुवर्धन—विजय की स्मृतियाँ, कीर्ति स्तंभ, वीर पुरुषों की समाधियाँ आदि राष्ट्र के प्राणों को उत्साह-प्रदान करने का कार्य अवश्य करती हैं, किंतु यदि कीर्ति-चिह्न व्यक्ति-पूजा के चिह्न बन जाएँ तो इनसे हानि भी हो सकती है । मैं जानना चाहता हूँ, वत्स, कि तुमने क्या प्रशस्ति लिखी है ।

[वत्स एक कागज़ अपने अंगरखे में से निकाल कर देता है । विष्णुवर्धन हाथ में लेकर एक दृष्टि डालता है, फिर सुहासिनी को देता है]

विष्णुवर्धन—देखा, इस पगले वत्स ने क्या लिखा है ? पढ़ो, ज़रा जोर से पढ़ो ।

सुहासिनी—“जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोधर्मन ने उन प्रदेशों को भी जीता जिन पर गुप्त सम्राटों का आधिपत्य नहीं था और न तो जहाँ राजाओं के मुकुट को ध्वस्त करने वाली हूणों की आज्ञा ही प्रवेश कर पायी थी । लौहित्य से लेकर महेन्द्र पर्वत तक और गंगा से स्पष्ट हिमालय से लेकर पश्चिम पयोधि तक के प्रदेशों के सामंत उसके चरणों पर लोटे । मिहिरकुल ने भी, जिसने भगवान शिव के अतिरिक्त और किसी के सामने सिर नहीं नवाया, अपने मुकुट के पुष्पों के द्वारा उसके युगल चरणों की अर्चना की ।”

विष्णुवर्धन—क्यों वत्स, तुमने सारा काव्य-चमत्कार मुझ पर ही खर्च कर दिया । इतनी अतिशयोक्ति क्यों की तुमने ? मेरा सम्मान करने के लिए कितने नरेशों का अपमान कर डाला तुमने । मेरे विचार में इस कीर्ति-स्तंभ को आज ही धराशायी कर देना चाहिये ।

हेमचन्द्र—आप निरंकुश नरेश नहीं हैं जो जनेच्छा को पद-मर्दित कर सकें । इस पर अंकित अक्षरों में वत्स भट्ट नहीं, जनता की श्रद्धा की मूकवाणी बोल रही है । क्या आप सत्ता प्राप्त कर प्रथम कार्य

जन-वाणी का गला घोटने का करेंगे ?

विष्णुवर्धन—तो मुझे जन-वाणी का अत्याचार सहन करना ही पड़ेगा किन्तु याद रखो काल के प्रचंड भंभावात में यह कीर्ति-स्तम्भ कदली-स्तम्भ की भाँति उखड़कर भूमि पर लोटने लगेगा ।

[महाज्ञान, अभयदत्त, धर्मदास, उमा और कंचनी का प्रवेश और नियमानुसार विष्णुवर्धन को नमस्कार करना । कंचनी नृत्य करने के वस्त्रों में है ।]

मंदाकिनी—तुमने तो हमें मुँह न दिखाने की शपथ खाई थी ।

कंचनी—मैं नहीं चाहती थी कि दो नारियों की प्रतिस्पर्धा की गाथा इतने व्यक्तियों के सम्मुख प्रकट हो—किन्तु, मैं तो वेश्या हूँ । वेश्या समाज से घूँघट नहीं कर सकती । मंदाकिनी देवी, आपने तनिक, असत्य भाषण किया है । मैंने मुँह न दिखाने की शपथ नहीं ली थी बल्कि आपकी आज्ञा यह हुई थी कि अपने पूर्ण रूप से वेश्या होने का प्रमाण जब तक मैं न दूँ मैं मुँह दिखाने का अधिकार नहीं पाऊँगी—और मैंने आपकी आज्ञा को चरितार्थ करने की शपथ ली थी ।

मंदाकिनी—प्रमाण लाई हो ?

कंचनी-- (अंगुली से मिहिरकुल-प्रदत्त मुद्रिका मंदाकिनी को देती हुई) मुद्रिका पर नाम पढ़ो । है मिहिरकुल की मुद्रिका । कंचनी ने मिहिरकुल के पिता की हत्या की थी—किन्तु फिर भी मिलने पर उसने कंचनी का वध नहीं किया बल्कि पुरस्कार-स्वरूप अथवा स्मृति-चिह्न-स्वरूप उसने अपनी मुद्रिका प्रदान की—यह सफलता एक सफल वेश्या ही प्राप्त कर सकती है ।

वस्स—आज स्वाधीनता-प्राप्ति के उपलक्ष में उत्सव मनाने का दिन है, कंचनी, और तुम दोनों विवादी स्वर छेड़ बैठी हो ।

कंचनी—तो क्या सत्य ही स्वाधीनता आ गई है ?

विष्णुवर्धन—तुम्हें कुछ संदेह है, कंचनी !

कंचनी—इसमें संदेह नहीं कि आपने मिहिरकुल को मार डाला, अवशेष
हूणों को भारतीय बनकर भारत में बसने को बाध्य कर दिया—
किन्तु फिर भी क्या हम स्वाधीन हो गए ? क्या प्रत्येक व्यक्ति को
समान विकास करने का अवसर मिल गया है ।

विष्णुवर्धन—मिलनाही चाहिए और मिलेगा ही ।

कंचनी—तो प्रमाण दीजिए ।

विष्णुवर्धन—क्या प्रमाण चाहती हो ?

कंचनी—एक वेश्या गृहिणी बनाना चाहती है, बोलो, बनने दोगे उसे ?

विष्णुवर्धन—कौनसी वेश्या है जो गृहिणी बनना चाहती है ?

कंचनी—मैं हूँ !

विष्णुवर्धन—मैं उसे अपनी ग्रहिणी बनाने को प्रस्तुत हूँ ।

कंचनी—सुहासिनी का क्या होगा !

विष्णुवर्धन—वह वीरांगना है, उसने देश-हित के लिए अपने सन्तोदर का
अपने हाथ से बध किया है, वह अपनी आकांक्षा की भी-हत्या
कर सकती है ।

मंदाकिनी—किंतु मैं यह अनर्थ नहीं होने दूँगी । (कंचनी से) मैंने
तुम्हें पुरस्कार देने का वचन दिया था—वह पुरस्कार मैं दूँगी ।
यदि वास्तव में तुम गृहिणी बनने को उत्सुक हो तो मैं अपने हाथ
से तुम्हारा हाथ वत्स के हाथ में दे दूँगी ।

कंचनी—किंतु, कंचनी किसी की कृपा नहीं चाहती । जनेन्द्र ने मुझ पर
जो अनुग्रह दिखाया उसकी स्मृति के प्रकाश में मैं जीवन की शेष
घड़ियाँ काट लूँगी । मैं लौट जाऊँगी उज्जयिनी के अपने उसी
भवन में जहाँ सहस्र-सहस्र वृश्चिकों के दर्शन के समान अनेक
वासना से परिपूर्ण अभिनयों की स्मृतियाँ मुझे डसेंगी—किंतु मैं सब
कुछ सहूँगी ।

विष्णुवर्धन—तुम सुहासिनी, मंदाकिनी और उमा से कम वीरांगना

नहीं हो। यह सामने जो कीर्ति-स्तंभ खड़ा है उसके मूल में आधार-शिला के रूप में तुम भी हो—इसे मत भूलो। वेश्या होना ही अपमानजनक बात नहीं। वेश्या-जीवन की भी एक नैतिकता है। धन तुम्हारे तन को भले ही मोल ले सका हो—किंतु उसने तुम्हारे धर्म को तो मोल नहीं लिया। देश-कार्य की स्वयं सेविकाओं में तुम सब से आगे रहें। आज समय तुम्हें आदर न दे तो इससे तुम्हारा कुछ नहीं घटेगा। तुम्हारा आत्म-संतोष ही तुम्हारे कार्य का पुरस्कार है, कंचनी।

कंचनी—जनेन्द्र तुमने मुझे जिला लिया। मैंने सोचा था आज स्वाधीनता के उत्सव में अपने जीवन का अंतिम नृत्य दिखाकर सदा के लिए आँखें मूँद लूँगी—किंतु नहीं मैं जीवित रहूँगी। जब तक दीपक में स्नेह है वह जलेगा।

महाज्ञान—जनेन्द्र, बाहर जनता आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही है।

हेमचन्द्र—जनेन्द्र आप आसन ग्रहण करें ताकि सब स्थान ग्रहण कर सकें।

[विष्णुवर्धन आसन ग्रहण करता है, शेष व्यक्ति भी बैठते हैं]

विष्णुवर्धन—सब लोगों को आने दो।

[हेमचन्द्र बाहर जाता है। थोड़ी ही देर में जनता सहित अन्दर आता है।]

जनता—जनेन्द्र विष्णुवर्धन की जय ! जनेन्द्र विष्णुवर्धन की जय !!

विष्णुवर्धन—आदरणीया महिलाओं एवं भद्रपुरुषों ! मुझे आपका उत्साह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई। हमारे देश से विदेशी सत्ता का अंत हो गया—हम पूर्णतः स्वाधीन हो गए। मैंने इसी स्थान पर पूजनीया माता जी की प्रज्वलित चिता के सम्मुख भारत से विदेशी सत्ता का नाश करने की शपथ ली थी वह आज पूर्णतः पूरी हो गई है। उस समय मेरे पास सेना नहीं थी—युद्ध लड़ने योग्य

शस्त्र नहीं थे—धन नहीं था, मैं किसी प्रदेश का राजा भी नहीं था—किंतु मैं जानता था मेरा देश विदेशियों के अत्याचार से पीड़ित है—विद्रोह की चिनगारी भीतर ही भीतर प्रत्येक हृदय में सुलग रही है। मैंने उसे एक फूँक लगाई। ज्वाला प्रज्वलित हो उठी, जिस में विदेशी सत्ता रुई के ढेर के समान जल कर भस्म हो गई। इसमें मेरा कोई चमत्कार नहीं है, जो कुछ हुआ है वह आप लोगों के बलिदान और तप-त्याग से हुआ। मैं आप सबको धन्यवाद देकर आज के उत्सव के कार्यक्रम को आगे चलाने की प्रार्थना करता हूँ।

जनता—जनेन्द्र विष्णुवर्धन की जय ! जनेन्द्र विष्णुवर्धन की जय !!

महाज्ञान—आज के उत्सव का प्रथम कार्य जनेन्द्र का सम्मान करना है, इस हेतु मालव जनता ने जनेन्द्र विष्णुवर्धन को यशोधर्मन और विक्रमादित्य के विरुद्ध से विभूषित करने का निश्चय किया है। बोलो जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोधर्मन विक्रमादित्य की जय।

जनता—जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोधर्मन विक्रमादित्य की जय।

विष्णुवर्धन—मालव जन ने मेरी सेवाओं का जो सम्मान किया है उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। एक प्रकार से यह आप आने ही श्रम और बलिदान को पुरस्कृत कर रहे हैं। मेरा आपसे केवल इतना निवेदन है कि यदि प्रमादवश मुझ से कोई त्रुटि हो जाए तो मुझ पर कभी दया न करना। मेरे कारण देश का हित संकट-ग्रस्त हो तो मेरे अतीत को भूल जाना क्योंकि व्यक्ति से देश बड़ा है। अब मेरी इच्छा से स्वाधीनता-संग्राम की तपस्विनी—सेविका कंचनी जनता का मनोरंजन करेगी।

हेमचन्द्र—और अंत में जनेन्द्र के यशस्वी कर-कमलों से कीर्ति-स्तंभ का अनावरण होगा।

कंचनी—(नाचती और गाती है)

गा रहा है खग गगन में
मुक्त जीवन हो गया ।

पींजरा टूटा पड़ा है
बध अधिक का हो गया ।
खोल दी आँखें जवानी ने
बुढ़ापा सो गया ।
इयोति-सागर की तरंगों
में अधेरा खो गया ।

पा मलय का स्पर्श मृदु
उत्फुल्ल उपवन हो गया ।
गा रहा है खग गगन में
मुक्त जीवन हो गया ।

शस्य धरती पर नया है,
है पवन का मन नया,
जीर्णता को चार करके
हो गया है तन नया ।
बोलता है धड़कनों में
आज परिवर्तन नया,

नृत्य नूतन हो गया है
गान नूतन हो गया ।
गा रहा है खग गगन में
मुक्त जीवन हो गया ।

[कंचनो का गान समाप्त होता है ।]

हेमचन्द्र—अब मैं जनता की ओर से जनेन्द्र से कीर्ति-स्तंभ का अनावरण
करने की प्रार्थना करता हूँ ।

[विष्णुवर्धन उठता है ।]

जनता—(पूरे उत्साह से अनेक बार) जनेन्द्र विष्णुवर्धन यशोधर्मन
विक्रमादित्य की जय ।

[पटाक्षेप]

